चन्दामामा
नवम्बर १९७७

आनंद द्वीप!
कॅडबरिज़
जेम्स
Cadbury's
MILK CHOCOLATE
GEMS
चॉकलेट से भरे रंगीन कॅडबरिज़ जेम्स
CHAITRA-C-105 HIN

केवल ओडोमॉस ही दो तरह से आपकी निश्चित सुंरक्षा करता है, मच्छरों को दूर भगाकर...

रातभर चैन की नींद सुलाता है!

ओडोमॉस जैसी सुरक्षा आपको अन्य किसी मच्छर-प्रतिरोधक से नहीं मिल सकती:

इसकी गंध मच्छरों को पास नहीं फटकने देती।
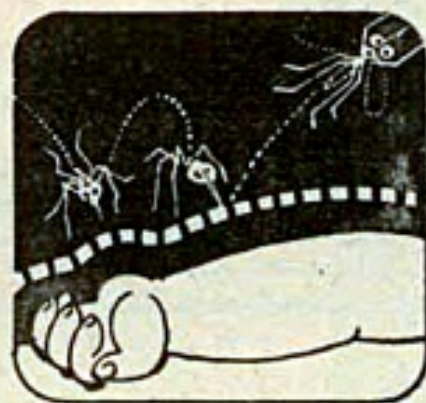
इसमें मिला अद्‌भुत तत्व रात भर आपकी त्वचा को एक आवरण देकर मच्छरों को दूर रखता है।

इसीलिए ओडोमॉस आज भारत में सर्वाधिक बिकने वाला मच्छर-प्रतिरोधक है।

मच्छरों के हमले से बचिये

ओडोमॉस

की सुरक्षा पाइये!

CHAITRA-BLS-86 HIN

चन्दामामा

नवम्बर १९७७

Printed by B. V. REDDI at Prasad Process Private Ltd., and Published by B. VISWANATHA REDDI for CHANDAMAMA CHILDREN'S TRUST FUND (Prop. of Chandamama Publications) 2 & 3, Arcot Road, Madras-600 026 (India). Controlling Editor: NAGI REDDI. CHANDAMAMA is published monthly and distributed in U.S.A. by Chandamama Distributors, West Chester PA 19380. Subscription 1 year $ 6-50. Second Class Postage paid at West Chester, PA.

चन्दामामा

संस्थापक : 'चक्रपाणी'

संचालक : नागिरेड्डी

इस महीने की बेताल कथा "पुल" है। पुल का निर्माण करना समाज के विकास का लक्षण है। उसे तोड़ देना अविवेक का द्योतक है। एक बार जो पुल गिराया या तोड़ा जाता है, पुनः उसका निर्माण करना सरल नहीं है। उत्तम संप्रदायों की अपेक्षा बुरे संप्रदाय अधिक समय तक घर कर जाते हैं। इसलिए जहाँ तक हो सके उत्तम संप्रदायों को बनाये रखने का प्रयत्न करना अत्यंत ही आवश्यक है। उत्तम संप्रदायों की परिरक्षा करनेवाले भावों का प्रचार करना हो तो पुलों की नितांत जरूरत है। उनके ध्वस्त होने से होनेवाला नुक़सान अपार है।

वर्ष : ३० नवम्बर १९७७ अंक : ३

एक प्रति : १-२५ :: वार्षिक चन्दा : १५-००

संप्राप्त मवमानम् यः
तेजसा न प्रमार्जति
कस्तस्य पुरुषार्थोस्ति
पुरुषस्याल्प तेजसः ॥ १ ॥

[अपमान के वक्त जो व्यक्ति पौरुष के द्वारा उसे दूर नहीं करता, ऐसे तेजोहीन के लिए कोई भी पुरुषार्थ प्राप्त न होगा।]

हीनम् रतिगुणै स्सर्वै
रभिहंतार माहके,
त्यजंति नृपतिम् सैन्याः
संविग्ना स्तम् सर्वेश्वरम् ॥ २ ॥

[सदा पीड़ा देनेवाले राजा को युद्ध के समय खीझकर सैनिक त्याग देते हैं।]

सर्वकाल समृद्धम् हि
हस्तस्वरथ संकुलम्
पितृपैतामहम् राज्यम्
कस्य नावर्तये न्मनः? ॥ ३ ॥

[चतुरंगी सेना से पूर्ण तथा दादा–पर दादाओं से प्राप्त होनेवाले राज्य को देखते-देखते कौन त्याग देगा?"

सूक्तियाँ

काकोलूकीयम

[५२]

ब्राह्मण जब थोड़ी दूर और आगे बढ़ा, तब दूसरा चोर मजदूर के वेष में आया और बोला–"छी: छी:, मरा हुआ यह बछड़ा आप को भले ही प्रिय हो, पर क्या इसे कोई कंधों पर उठायेगा? बुजुर्ग कहा करते हैं कि क्षुद्र जानवर तथा शवों का स्पर्श करने पर प्रायश्चित्त के रूप में पंच• कव्य खाना अथवा चांद्रायण व्रत करना आवश्यक है।"

"अबे! क्या तेरी आँखें दिखाई नहीं देतीं? जीवित बकरी को मृत बछड़ा कह रहा है?" ब्राह्मण झल्ला उठा।

"महाशय, सच्ची बात झट कहने की बीमारी है मुझे! आप जैसा उचित समझें, करें?" मजदूर ने कहा।

ब्राह्मण थोड़ी दूर और आगे बढ़ा, तब तीसरा चोर गडरिये के वेष में सामने आया और बोला–"महाशय, गधे को कंधों पर लादकर ले जाना आप को अच्छा लगता है? भूल से भी सही अगर गधे का स्पर्श करते हैं तो वस्त्रसहित स्नान करना ज़रूरी हो जाता है। किसी के देखने के पहले आप इसे फेंक दीजिए!"

इस पर ब्राह्मण ने अपने मन में सोचा–"यह बकरी कोई राक्षसी होगी! मेरा सर्वनाश करने के लिए इसने यह रूप धारण किया होगा, राक्षसी न होती तो यह एक को कुत्ते जैसे, दूसरे को बछड़े की भांति और तीसरे को गधे की तरह दिखाई देती?" यों सोचकर उसने बकरी को वहीं पर फेंक दिया और अपने गाँव की ओर दौड़ पड़ा।

इसके बाद तीनों चोरों ने बकरी को पकाकर भर पेट खाया।

स्थिरजीवी ने धोखा खाये ब्राह्मण की कहानी सुनाकर आगे यों कहा :

"नये नये आये हुए नौकर की लगन, खाने पर आये हुए अतिथियों की प्रशंसा, युवती के आँसू और धोंखेबाज की वाक्चातरी पर दगा न खानेवाला व्यक्ति कहीं होगा? उल्लू तो भूल कर रहे हैं! चाहे कोई भी व्यक्ति दुर्बल क्यों न हो, पर जहाँ संख्या-बल अधिक होता है, वहाँ पर दुश्मनी मोल लेना ठीक नहीं। इन कौओं की संख्या अधिक है! इसलिए सावधान रहना होगा! एक महा सर्प एक करोड़ चींटियों से वैर मोलकर नाश को प्राप्त हुआ है न?"

"वह कैसी कहानी है?" मेघवर्ण ने पूछा। इस पर स्थिरजीवी ने चींटियों द्वारा मृत्यु को प्राप्त सांप की कहानी यों सुनाई :

एक जमाने में महाकाय नामक एक काल सर्प था। वह अपने महाकाय एवं बल पर अत्यंत अभिमान रखता था। एक दिन उसने अपनी बांबी के बड़े सुरंग से बाहर निकलने के बजाय अपनी शक्ति के बल पर विश्वास करके छोटे सुरंग से बाहर निकलना चाहा, पर मिट्टी ज्यादा कड़ी थी, इस कारण उसका शरीर घायल हो गया। उन घावों से खून व पीब निकलने लगा। खून की गंध पाकर हज़ारों चींटियाँ उत्साह में आ गईं और सांप को पकड़कर खाने लगीं। सांप ने सैकड़ों चींटियों को मारकर खा डाला, सैकड़ों चींटियों को घायल भी बना दिया, मगर बची हुई हज़ारों चींटियों ने उस पर बुरी तरह से हमला किया और उसे पकड़कर खा डाला।

यह कहानी सुनाकर स्थिरजीवी मेघवर्ण को अलग ले गया और बोला—"यह बात तुम गुप्त रखो, मेरी बातों को सावधानी से सुनकर वैसा आचरण करो। हमें बड़ी आफ़त आनेवाली है। उचित कार्रवाई हमने अगर न की तो हम निश्चय ही

सर्वनाश को प्राप्त होंगे। प्रिय वचन, पुरस्कार, षड़यंत्र और संघर्ष–ये चारों साधन हमें काम न देंगे। इसलिए मेरा सुझाव यह है कि सार्वजनिक सभा में मेरी कटु आलोचना करके मेरे शरीर भर में खून पोत दो और शत्रु के गुप्तचरों को विश्वास दिलाकर मुझे बरगद के तने के पास फेंक दो, तब सपरिवार हिरणों के निवासवाले पहाड़ के पास चले जाओ। यह स्थान यहाँ से दो कोस की दूरी पर है। मैं प्रवंचना के द्वारा शत्रु का विश्वास प्राप्त करूँगा, और साथ ही उनके निवास का भी पता लगाऊँगा। दिन के वक़्त वे पक्षी अंधे होते हैं, इसलिए उनका संहार करके मेरे लौटने तक तुम लोग वहीं पर रह जाओ।"

जब वह मंत्रालय में लौट आया तब स्थिरजीवी ने कौओं के राजा का कठोर शब्दों में आक्षेप करते हुए पूछा–"हम सब भली भांति जानते हैं कि तुम में किसी प्रकार की शक्ति एवं सामर्थ्य नहीं हैं। ऐसी हालत में तुम्हारे द्वारा कौओं का उपकार कैसे होगा?"

इस पर कौए के मंत्री क्रोध में आ गये, अपने सेनापतियों को उकसाकर स्थिरजीवी का वध करने की तैयारियाँ कीं। लेकिन मेघवर्ण ने समझाया–"इस दुष्ट को मेरे जिम्मे छोड़ दो।" यों वह कहकर स्थिरजीवी पर टूट पड़ा, भयंकर रूप से नोचने का अभिनय करते उसके शरीर पर खून पोत दिया, तब वृक्ष के तने के पास फेंककर सपरिवार हिरणों के पहाड़ के पास चला गया।

उल्लुओं में अरिमर्दन की पत्नी गुप्तचरी कार्य में प्रवीण थी। उसने स्थिरजीवी के पतन का पता लगाकर अरिमर्दन को सुनाया। स्थिरजीवी जब पेड़ पर से नीचे गिर पड़ा, तब मेघवर्ण चला गया, मगर वह मेघवर्ण के सपरिवार भाग जाने के समाचार से अपरिचित थी, वह केवल इतना ही जानती थी कि वे ज़रूर चले जानेवाले हैं।

१९०. अस्थिकालंकरण

भूमध्य सागर के माल्टा टापू में हड्डियाँ बहुत ही लोकप्रियता को प्राप्त कर चुकी हैं। एक स्थान पर खुदाई में ३३,००० प्राचीन मानवों की हड्डियाँ प्राप्त हुई हैं। दूसरी जगह मध्य युग के योद्धाओं की खोपड़ियों को एक मंदिर जैसे स्थान पर अलंकार के रूप में जड़ दिया गया है। यहाँ पर चित्र में श्मशान वाटिका का एक हिस्सा है। इसमें दो हज़ार खोपड़ियों को कुड्यालंकार के काम में लाया गया है।

माया सरोवर
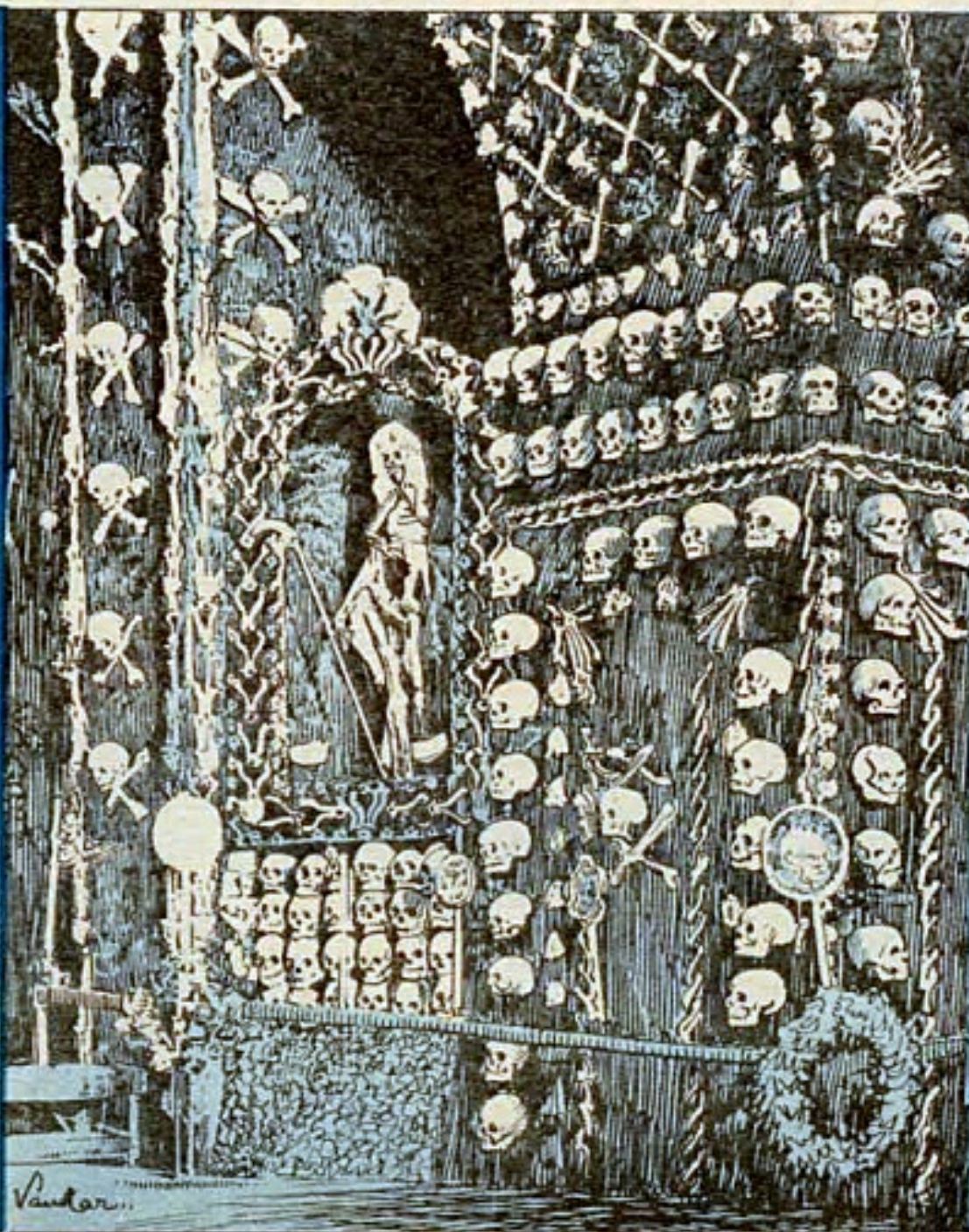
[२२]

[नदी तट पर स्थित पहाड़ी गुफ़ाओं में रहनेवाले मैदान में जयशील तथा सिद्ध साधक को मकरकेतु दिखाई दिया। उसके साथ जयशील का बचपन का साथी देवशर्मा तथा सेनापति का पुत्र मंगलवर्मा दोनों थे। सिद्ध साधक ने जलग्रह से नर वानर की रक्षा की, वह हाथ उठाकर सिद्ध साधक के सामने औंधे मुँह गिर पड़ा। बाद...]

नर वानर का सिद्ध साधक के हाथों में पालतू जानवर बने देख मकरकेतु के साथ सभी लोग विस्मय में आ अये। जयशील एक बार प्रसन्नतापूर्वक हँसकर बोला–"लगता है कि इतने समय बाद सिद्ध साधक ने अपने लिए एक वाहन प्राप्त कर लिया है। मगर वह बड़ा ही खतरनाक वाहन है। कृपाणजित को उस वाहन ने खूब सताया और सर्पस्वर को उठाकर भाग गया। हम समझ रहे थे कि वह मर गया होगा, पर न मालूम वह कैसे अपने प्राण बचा पाया है?"

"मैंने ही सर्पस्वर को नर वानर से बचाया है। उसी के द्वारा मुझे मालूम हुआ कि तुम इस प्रदेश में पहुँच गये हो।" मकरकेतु ने कहा।

जयशील ने मकरकेतु की ओर आपाद मस्तक परखकर देखा, तब आश्चर्य भरे

स्वर में कहा–"अरे, तुम तो नर वानर के हाथों में भयंकर घावों के शिकार हो गये थे, मुझे इस बात का आश्चर्य होता है कि तुम इतने शीघ्र कैसे स्वस्थ हो गये ?"

मकरकेतु ने देवशर्मा की ओर इशारा करते हुए कहा–"मैं पहाड़ों में एक स्थान पर मौत की घड़ियाँ गिन रहा था। इन्होंने अपनी चिकित्सा द्वारा मुझे बचाया है। सब लोग इनको वैद्य देव कहकर पुकारते हैं। इसलिए मैं भी इन्हें इसी नाम से पुकारता हूँ। इस बीच मैं एक बार माया सरोवर तक हो आया, फिर यहाँ पर लौटकर मैं तुम्हारी ही खोज कर रहा था।"

जयशील की समझ में न आया कि अमरावती नगर का निवासी देवशर्मा जो उसका बचपन का मित्र है तथा जुए के गृह में उसके साथ जुआ खेला करता था, वह इस तरह अचानक कैसे वैद्य विद्या में दक्षता प्राप्त करके वैद्यदेव बन गया है! फिर एक अपरिचित व्यक्ति की भांति उसने देवशर्मा को प्रणाम करके पूछा– "महाशय वैद्यदेव! क्या यह मंगलवर्मा आप का अनुचर है?"

देवशर्मा मुस्कुराकर गंभीर वाणी में बोला–"मंगलवर्मा मेरा शिष्य है। इस वक़्त मेरे यहाँ वैद्य विद्या में प्रशिक्षण प्राप्त कर रहा है। एक समय यह माया सरोवर में पहुँचना चाहता था, क्यों वर्मा, मेरा कहना सही है न?"

मंगलवर्मा पल भर के लिए अतिशय व्यथा के मारे कराह उठा, फिर अपने लकड़ीवाले पैर की ओर देख ग्लानि का अनुभव करते हुए जवाब देने ही जा रहा था कि आसमान में पंखों के फड़फड़ाने की आवाज़ सुनाई दी। सबने सर उठाकर ऊपर देखा।

आसमान में हँसों का एक झुंड एक रथ को खींचते तेजी के साथ उड़ रहा था। उस दृश्य को देखते ही मकरकेतु, सर्पनख तथा सर्पस्वर ने हाथ उठाकर एक स्वर में

कहा–"माया सरोवरेश्वर की जय! माया सरोवरेश्वर की जय!"

संभवतः वह पुकार हंसोंवाले रथ पर सवार लोगों के कानों में पड़ी होगी। दूसरे ही क्षण वह रथ आसमान में पल भर के लिए रुका, फिर अपनी दिशा बदलकर जयशील आदि के निकट की ओर उड़ता आया और समीप में स्थित नदी के जल में उतरा।

नदी के तट पर स्थित मकरकेतु तथा उसके अनुचर सर्पनख और सर्पस्वर विस्मय के साथ रथ की ओर देख आपस में कहने लगे–"सरोवरेश्वर कहाँ? उनका अंगरक्षक अकेले ही रथ पर यहाँ क्यों आया है?" तब वे सब इस बात का पता लगाने के ख्याल से पानी में कूद पड़े और रथ के निकट पहुँचे।

अब नदी के तट पर जयशील, सिद्ध साधक, वैद्यदेव नाम से प्रसिद्ध देवशर्मा तथा सेनापति का पुत्र लकड़ी के पैरवाला मंगलवर्मा बच रहें। जयशील देवशर्मा को आँख का इशारा करके मंगलवर्मा से बोला–"मंगलवर्मा, हम लोग कभी शत्रु नहीं रहे हैं और न मित्र ही रहे। लगता है कि तुम एक बार माया सरोवर हो आये हो। क्या मैं जान सकता हूँ कि यह बात सच है? वहाँ पर राजा कनकाक्ष के बच्चे कांचनवर्मा और कांचनमाला कैसे हैं? जल्दी बताओ, यह बात जानने की मेरे मन में उत्कंठा है।"
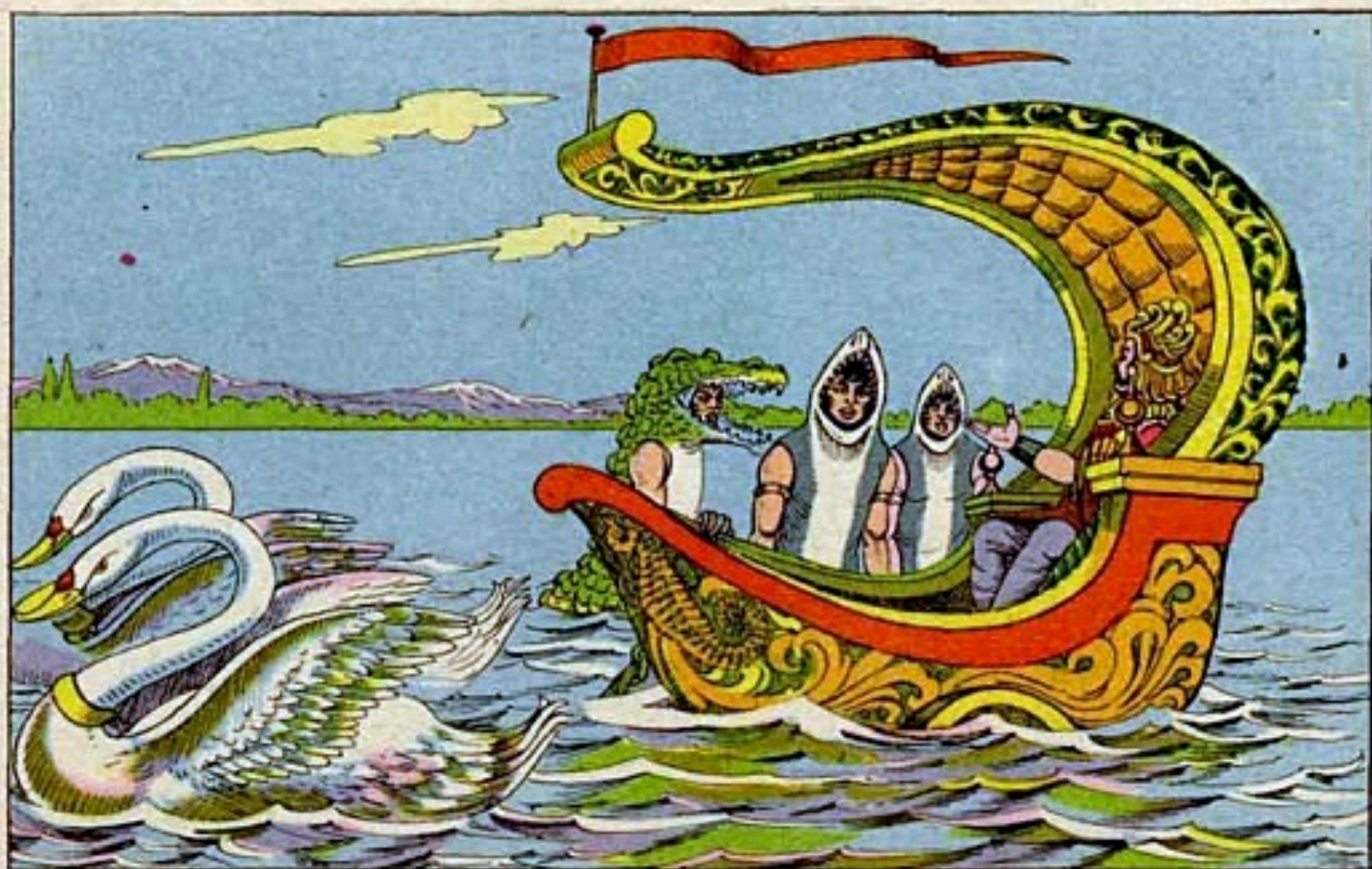
इतमीनान से इन जल प्राणियों से बात कर रहे हो? उधर मकरकेतु और उसके अनुचर पक्षियों के रथ पर सवार हो भाग जाना चाहते हैं। विलंब न करो, हमें तत्काल उन्हें रोकने का कोई न कोई उपाय करना होगा।"

"सिद्ध साधक! सचमुच यदि वे भाग जाना चाहें तो क्या हम उन्हें रोक सकते हैं? अगर मान लो कि वे भाग गये, फिर भी यहाँ पर उनके दो अनुचर जो हैं? उनके द्वारा हम वास्तविक समाचार का पता लगा सकेते हैं; चिंता न करो।" जयशील ने समझाया।

मंगलवर्मा ने कोई उत्तर देना चाहा, लेकिन सिर झुकाकर एक बार अपने लकड़ीवाले पैर को देखा, फिर देवशर्शा की ओर दृष्टि दौड़ाकर बोला–"ऐसे प्रश्नों का उत्तर मैं वैसे ही देना नहीं चाहूँगा, इसके लिए मुझे वैद्यदेव की अनुमति चाहिए।"

"वाह, मंगलवर्मा! तुम्हारी गुरुभक्ति प्रशंसनीय है।" यों मंगलवर्मा की तारीफ़ करके जयशील बोला–"तब तो मैं वह सवाल वैद्यदेव के सामने ही रखता हूँ।"

उसी वक़्त वहाँ पर "जय महाकाल की!" चिल्लाते सिद्ध साधक नर वानर पर आ पहुँचा, बोला–"जयशील! तुम

सिद्ध साधक ने मंगलवर्मा तथा देवशर्मा की ओर आँखें तरेरकर देखा, तब कहा–"यह मंगलवर्मा तो हमारे जान-पहचान का है और यह दूसरा आदमी तो जलप्राणी जैसे नहीं लगते! हमारे माया सरोवर तक पहुँचने में मदद दे सकनेवाले लोग नदी में चले गये हैं। वे लोग वहीं से भाग निकले तो हम फिर कभी माया सरोवर तक पहुँच न पायेंगे।"

ये बातें सुन देवशर्मा ने थोड़ा नाराज होकर कहा–"सिद्ध साधक! लगता है, तुम में विवेकशीलता की अपेक्षा उद्रेक ज़्यादा है। जानते हो, मकरकेतु इस प्रदेश में जान-बूझकर क्यों आया हुआ है?

तुम्हें तथा तुम्हारे मित्र जयशील को माया सरोवर में ले जाने के लिए ही; समझें! वहाँ पर रहनेवाले भयंकर जलवृक्ष राक्षस के अनुचरों के साथ तुम दोनों को लड़कर प्राणों के साथ बचना होगा!"

"जल राक्षस! महाकाल की मदद से उन्हें इस शूल में चुभोकर पानी से बाहर खींच लाऊँगा और किनारे डाल दूँगा। जयशील के पास तो महाकाल के अनुचर काल द्वारा पुरस्कृत खड्ग है ही।" सिद्ध साधक ने कहा।

जयशील ने भांप लिया कि देवशर्मा का परिचय न जानने के कारण सिद्ध साधक उसके साथ झगड़ा मोल लेगा, इसलिए उसने शांत भाव से देवशर्मा से कहा—"महाशय वैद्यदेव! आप अपने शिष्य मंगलवर्मा को भेजकर इस बात का पता लगा लीजिए कि नदी में मकरकेतु हँसों के रथ पर सवार व्यक्ति के साथ कैसी मंत्रणाएँ कर रहा है। कृपया विलंब न करें।"

देवशर्मा ने भांप लिया कि जयशील ने यह सुझाव क्यों दिया है, उसने मंगलवर्मा से कहा—"हे शिष्य मंगलवर्मा, तुम इस बात का पता लगा लाओ कि हंसों के रथ पर माया सरोवर के बिना उनका अंग रक्षक अकेले क्यों है?"

मंगलवर्मा ने सर झुकाकर देवशर्मा को प्रणाम किया और नदी की ओर चल पड़ा। उसके जाते ही जयशील ने देवशर्मा से पूछा—"देवशर्मा! अब बताओ! माया सरोवर के द्वारा चुराये गये राजकुमार और राजकुमारी कुशल तो हैं न?"

"वे दोनों कुशल हैं। उनके अपहरण पर हिरण्यपुर के राजा दुखी हैं, पर उनका अपहरण करने के कारण माया सरोवर भी कम दुखी नहीं हैं।" देवशर्मा ने समझाया।

जयशील और देवशर्मा का वार्तालाप सुनकर सिद्ध साधक "जय महाकाल की!"

चिल्लाते नर वानर पर से कूद पड़ा और बोला–"जयशील, यह कैसी विचित्र बात है? आप दोनों के बीच क्या पूर्व परिचय था? यह बात तुमने अब तक क्यों छिपाई?"

जयशील ने सिद्ध साधक को धीमी आवाज़ में बात करने का संकेत करके कहा–"सिद्ध साधक! यह देवशर्मा और मैं–हम दोनों बचपन के मित्र हैं। हम दोनों अमरावती नगर के निवासी हैं। एक जमाने में हम दोनों नगर के प्रसिद्ध जुआखोर हैं, समझें! यह तो एक बड़ी ही राम कहानी है। अब यह बात मकरकेतु पर प्रकट नहीं होनी चाहिए कि देवशर्मा मेरे मित्र हैं। यदि प्रकट हो गई तो हम माया सरोवरेश्वर का वध करके कांचनमाला और कांचनवर्मा को मुक्त नहीं कर पायेंगे।"

"ओह! यह बात है! अब तो पक्षियों के रथ का मामला आ पड़ा है! इसका रहस्य क्या है? यह रहस्य हमारे मित्र देवशर्माजी जानते होंगे।" यों कहते एक ही छलांग में देवशर्मा के निकट कूद पड़ा और उनसे गले लगाया।

देवशर्मा ने हँसते हुए सिद्ध साधक के कंधे पर थपकी देकर कहा–"माया सरोवर के जलवृक्ष राक्षस का तुम वध कर सकोगे, तो तुम्हें महाकाल से समस्त प्रकार की शक्तियाँ प्राप्त होंगी। वह जलवृक्ष तुम्हारे आराध्यदेव महाकाल का जानी दुश्मन है।"

"ओह, ऐसी बात है! तब तो मैं उसे बन्दी बनाकर अपने वाहन इस नर वानर का आहार बना दूँगा। क्यों रे सेवक नर वानर!" इन शब्दों के साथ सिद्ध साधक ने नर वानर के कंधे पर धीरे से शूल छुआया।

नर वानर उछलकर कूद पड़ा। नदी के तट पर खड़े हाथी जलग्रह की ओर बढ़ा। साधक ने आगे बढ़कर उसका हाथ पकड़ लिया और कहा–"ठहरो, नर वानर!

ठहरो! इस समय हम मकरकेतु और उसके मालिक सरोवरेश्वर के मित्र हैं। वह जल हाथी तुम्हारे बड़े भाई के समान है। याद रखो।"

ये बातें सुन देवशर्मा जोर से हँस पड़ा। अपने हाथ की रत्न खचित लाठी को उठाकर नदी की ओर दिखाते हुए कहा–"उधर माया सरोवर में कोई हलचल मच गई होगी! वरना माया सरोवरेश्वर के द्वारा जल विहार किया जानेवाला यह हंसों का रथ यों आकाश में उड़कर यहाँ पर नदी में उतर न गया होता।"

देवशर्मा यों समझा ही रहा था कि तभी आगे-आगे मंगलवर्मा तथा उसके पीछे चिंतापूर्वक सर झुकाये मकरकेतु वहाँ पर आ पहुँचे। मकरकेतु ने आँखों में आँसू भरकर कहा–"वैद्यदेव! अभी अभी एक-दो घड़ी पूर्व सरोवर में हंसों के रथ पर जल विहार करनेवाले माया सरोवरेश्वर तथा उनके साथ रहनेवाली राजकुमारी कांचनमाला को जलवृक्ष के अनुचर राक्षस अचानक जल में से ऊपर तिरकर आये और उन्हें बन्दी बनाना चाहा, रथ का सारथी अंगरक्षक ने उस खतरे को भांप लिया और वह रथ को जल पर से आसमान में उड़ा ले गया। लेकिन..." आगे वह बोल न पाया, अपने रुदन पर क़ाबू रखने का प्रयत्न करते हुए आँसू पोंछते खड़ा रह गया।

देवशर्मा ने बड़ी आतुरता दिखाते हुए पूछा–" रथ में रहनेवाले माया सरोवरेश्वर और कांचनमाला कहाँ ?"

मकरकेतु ने संभलकर कहा–" वैद्यदेव! बड़ा ही अनर्थ हो गया है। हंसों का रथ आसमान में उड़ ही रहा था कि उस पर गीधों के एक दल ने हमला किया। हंस भड़क उठे और तितर-बितर होने लगे, इस प्रयत्न में रथ उलट गया और इस कारण माया सरोवरेश्वर और राजकुमारी खिसक कर इस महारण्य में कहीं गिर गये हैं।"

यह समाचार सुनने पर देवशर्मा के साथ जयशील और सिद्ध साधक भी निश्चेष्ट हो गये। जयशील ने कहा–" राजकुमारी कांचनमाला का उतनी ऊँचाई पर से नीचे गिरकर जीवित रहना असंभव है। सिद्ध साधक! आज तक हमने जो प्रयत्न किये, वे सारे व्यर्थ हो गये। हमारा श्रम वृथा हो गया है।" इन शब्दों के साथ जयशील ने म्यान से तलवार निकालकर दूर फेंक दिया।

" अपने पिता के खतरे का समाचार सुनने पर न मालूम पद्ममुखी क्या कर बैठेगी?" यों कहते देवशर्मा ने रत्न खचित अपनी लाठी को ज़ोर से ज़मीन पर दे मारा।

सिद्ध साधक ने इतमीनान से सबके चेहरों की ओर एक बार देखा, तब कहा– "आप लोग निराश मत होइये। रथ से फिसलकर वे दोनों किसी तड़ाग या घनी शाखाओंवाले वट वृक्ष पर गिरकर प्राणों के साथ सुरक्षित होंगे! हम कुछ लोगों को उनकी खोज करने भेज देंगे। बाक़ी लोग जाकर उन जल राक्षसों को महाकाल की बलि देंगे।"

सिद्ध साधक की बातें समाप्त न हुई थीं, उसी वक़्त नदी की ओर से चिल्लाहटें सुनाई दीं–" जल राक्षस! जल राक्षस!"

जयशील के साथ सब ने सर उठाकर नदी की ओर देखा। भेड़िये के सिरवाले कुछ राक्षस पत्थरों से निर्मित गदा उठाये नदी में तैरते हंसों के रथ को घेरने तेजी के साथ आगे बढ़ रहे थे। (और है)

पुल

हठी विक्रमार्क पेड़ के पास लौट आया। पेड़ से शव उतारकर कंधे पर डाल सदा की भांति श्मशान की ओर चलने लगा; तब शव में स्थित बेताल ने कहा– "राजन, मैं नहीं जानता कि तुम्हारे इस श्रम का परिणाम क्या होगा? पर कभी-कभी अत्यधिक ईर्ष्या और द्वेष गाढ़ मैत्री के कारण बन जाते हैं। इसके उदाहरण के रूप में मैं तुम्हें शूरसेन की कहानी सुनाता हूँ। श्रम को भुलाने के लिए सुनो।"

बेताल यों कहने लगा: प्राचीन काल में एक नदी के दोनों तटों पर दो राज्य थे। इन दोनों राज्यों के बीच चिरकाल से मैत्री- चली आ रही थी, जिसके कारण दोनों राज्यों की जनता के बीच रिश्ते चले आ रहे थे, व्यापार और वाणिज्यों के संबंध थे, साथ ही एक राज्य के उत्सव व त्योहारों में दूसरे राज्य के लोग अधिक

बेताल कथाएं

संख्या में भाग लिया करते थे। इन सब को सुगम बनाने के हेतु नदी पर बहुत समय पूर्व ही एक मजबूत पुल बनाया गया था।

कालांतर में किसी कारण को लेकर उन राज्यों के बीच दुश्मनी पैदा हुई। इसका परिणाम युद्ध तक तो नहीं पहुँचा, लेकिन दोनों राजाओं ने अपने राज्यों के बीच संबंध तोड़ने के लिए नदी पर निर्मित पुल को दोनों ओर तुड़वा दिया जिससे भारी वाहनों का आवागमन बंद हुआ। परंतु लोग नावों में एक तरफ़ से दूसरी तरफ़ यात्रा करते और बीते दिनों की अच्छी हालत का स्मरण करके दुखी हो जाते थे।

कई वर्षों के बाद दोनों देशों के राजा स्वर्गवासी हुए और उनके पुत्र गद्दी पर बैठे, नदी के बायीं तरफ़ के देश का राजा शांतिसेन था, दायीं तरफ़ शूरसेन नामक एक राजा शासन करता था। दोनों राजा वैसे विवेकशील और धर्म बुद्धिवाले थे। इस कारण दोनों देशों की जनता अत्यंत सुखी थी। मगर पुल का अभाव उन्हें खूब खटक रहा था।

शूरसेन को अपने गुप्तचरों द्वारा बराबर यह समाचार मिलता रहा कि उसके देश की जनता भी शांतिसेन को उससे कहीं अधिक मानती है। खासकर उसकी दानशीलता की कहानियाँ लोगों में बराबर कही व सुनी जा रही हैं। उसने सोचा,
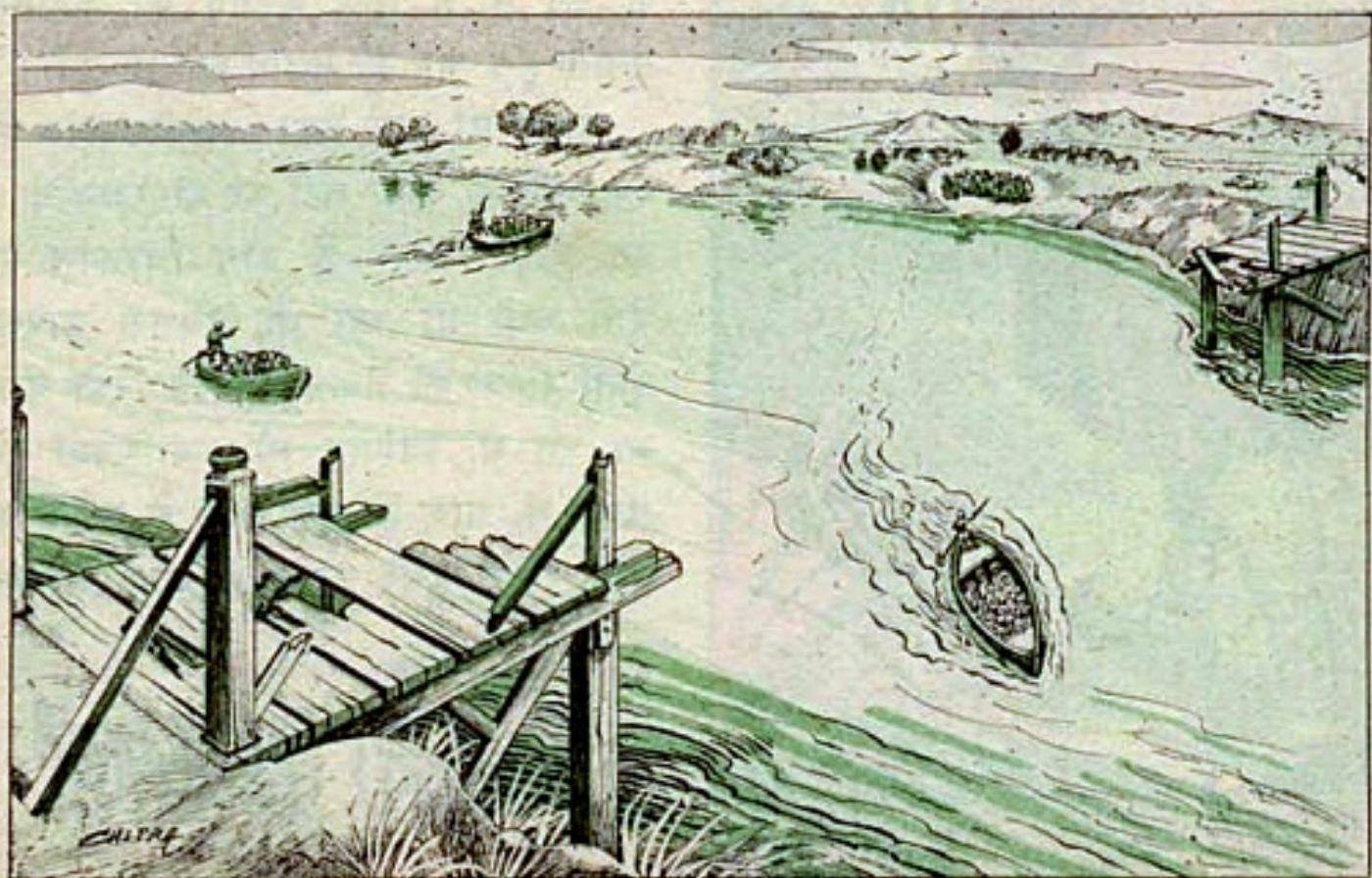
आखिर वह भी तो दान करता है। पर शांतिसेन को यह यश कैसे प्राप्त हुआ? क्या शांतिसेन के देश में उसकी प्रशंसा करनेवाला भी कोई है?

फिर क्या था, शूरसेन यश के लोभ में पड़कर अधिक मात्रा में दान देने लगा। इससे उसके आशय की सिद्धि नहीं हुई बल्कि जनता में यह अफ़वाह फैल गई कि वह शांतिसेन से स्पर्धा करके उससे भी ज्यादा यश पाने के ख्याल से अधिक दान दे रहा है। इससे उसका मन विकल हो उठा। साथ ही ईर्ष्या और अपमान से उसका दिल जल उठा और निद्रा तथा आहार उससे दूर हो गये। अंत में उसने शांतिसेन के राज्य में जाकर उसके बड़प्पन को स्वयं जान लेने का निश्चय कर लिया। यों निर्णय करके शूरसेन ने थोड़े समय के लिए अपना राज्य अपने मंत्रियों के हाथ सौंप दिया और साधारण वस्त्र धारण कर एक नाव पर नदी पार करके शांतिसेन के राज्य में पहुँचा और वह एक सराय में जा ठहरा। दिन भर वह जनता के बीच घूमते उनके विचार जान लेने का प्रयत्न करने लगा। वास्तव में उसकी दृष्टि में दूर के ढोल सुहावने होते हैं, यह कहावत गलत साबित हुई और सचमुच शांतिसेन का यश उसके देश में भी सर्वत्र फैला हुआ था। शूरसेन के नाम का स्मरण करनेवाला एक भी व्यक्ति उसे उस देश में दिखाई न दिया।

थोड़े दिन और बीत गये। शूरसेन ने अब निश्चय कर लिया कि शांतिसेन के बड़प्पन की जांच स्वयं करने पर ही उसकी सचाई का बोध हो सकता है। यों विचार करके वह राजमहल की ओर चल पड़ा। उस वक़्त उसके कपड़े मैले हो चुके थे। अच्छे भोजन के अभाव में वह दुबला-पतला हो चुका था, उसे एक राजा के रूप में कोई भी विश्वास करने की स्थिति में न था।

शूरसेन को राजा शांतिसेन के दर्शन बड़ी आसानी से प्राप्त हुए। तब जाकर शूरसेन ने समझ लिया कि कोई साधारण व्यक्ति अगर उसके दर्शन करने आता तो इतनी सरलता के साथ उसे उसके दर्शन प्राप्त नहीं हो सकते थे, बल्कि असंभव भी था।

शूरसेन को देखते ही शांतिसेन ने मुस्कुरा कर पूछा—"आप मुझसे क्या चाहते हैं?"

इस पर शूरसेन ने उत्तर दिया—"महाराज, मैं भी एक राजवंश का व्यक्ति हूँ। एक समय मैंने भी शासन किया था। मगर दुर्भाग्यवश मैं अपना राज्य खो बैठा हूँ। मैं आप के यश की कहानी सुनकर आप के दर्शन करने आया हूँ। पर आप ने मुझे अपने विचार प्रकट करने का आदेश दिया। यदि आप बुरा न माने तो आप मुझे अपने राज्य में से आधा राज्य दिला दीजिए।"

शांतिसेन ने मंदहास करते हुए कहा—"मैं जानता हूँ कि आप पड़ोसी देश के महाराजा शूरसेन हैं।"

यह खबर सुनते ही शांतिसेन के दरबार में स्थित सिपाहियों ने अपने अपने म्यानों से तलवारें निकालीं और क्रोध भरी दृष्टि से शूरसेन को देखा। क्योंकि उन दोनों देशों के बीच शत्रुता चली आ रही थी और न उन दोनों देशों के बीच कोई समझौता हुआ था। अतः वह एक शत्रु राजा था।

शांतिसेन ने उन्हें रोककर समझाया–"शूरसेन! आप के पास अपना राज्य है ही, परंतु उससे संतुष्ट न होकर आप मेरा आधा राज्य चाह रहे हैं।. आधा राज्य ही क्यों, मेरा संपूर्ण राज्य ले लीजिए। मैं प्रसन्नतापूर्वक आप को दे देता हूँ। आप विश्वास रखिये, इसके बाद में एक साधारण नागरिक की भांति अपना शेष जीवन बिताऊँगा।"

ये शब्द सुनकर शूरसेन लज्जित हुआ। उसने शांतिसेन से क्षमा याचना करते हुए कहा–"भाई शांतिसेन, मैं अपने मन की बात बता देता हूँ। हम फिर से अपने दोनों राज्यों के बीच पुल बनायेंगे।"

बेताल ने यह कहानी सुनाकर कहा–"राजन, शांतिसेन भले ही महान दाता क्यों हो, फिर भी आधा राज्य माँगनेवाले को पूरा राज्य देने की बात क्यों कही? शांतिसेन जब अपना पूरा राज्य देने को तैयार हो गये, तब उसे ग्रहण कर शूरसेन ने अपने प्रतिद्वन्द्वी शांतिसेन का पिंड छुड़ाने का प्रयत्न क्यों नहीं किया? उल्टे क्षमा माँगकर फिर से पुल बनाने की इच्छा क्यों प्रकट की? इन संदेहों का समाधान जानते हुए भी न दोगे तो तुम्हारा सिर टुकड़े-टुकड़े हो जाएगा।"

इस पर विक्रमार्क ने यों उत्तर दिया: "शूरसेन वास्तव में राज्य की कामना से न आया था। शांतिसेन की दानशीलता की जाँच करने आया था। वह उसकी दानशीलता के साथ उसकी उदारता को भी समझ पाया। क्योंकि यदि शांतिसेन में उदारता न होती तो अपने हाथ में आये दुश्मन का अंत करके वह दोनों राज्यों पर शासन कर सकता था। मगर शांतिसेन ने शूरसेन के प्रति मित्रता का भाव प्रदर्शित किया। इसलिए दोनों देशों के बीच पुल का निर्माण आवश्यक हो गया।"

राजा के इस प्रकार मौन भंग होते ही बेताल शव के साथ गायब हो पुनः पेड़ पर जा बैठा। (कल्पित)
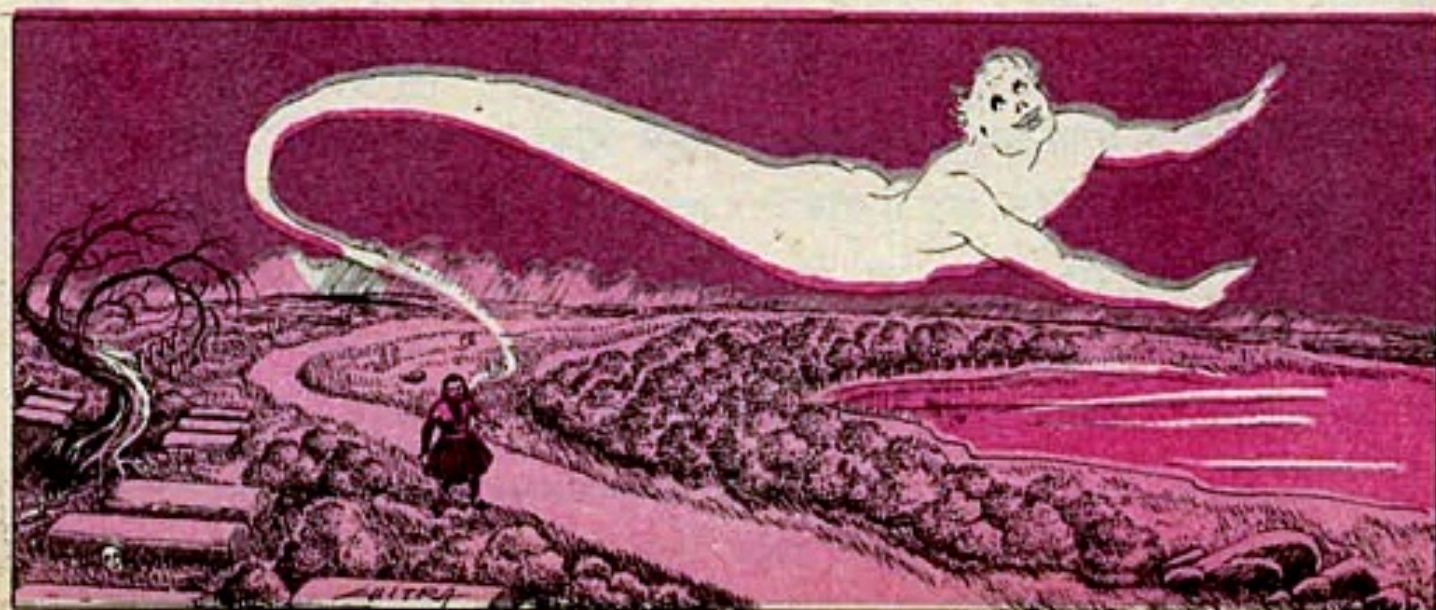
मनुष्य और भूत

बाहर मसूलधार वर्षा हो रही थी, आंधी चल रही थी। बिजली कड़क रही थी। देखने में वातावरण अत्यंत भयंकर लग रहा भा, ऐसा लगता था कि उस अविरल वर्षा के कारण एक बूढ़ी का पुराना खपरैलवाला घर किसी सी समय गिर सकता है।

उस मकान में रंगनाथ, मंगलनाथ और राजनाथ नामक तीन यात्रियों ने उस रात को प्रवेश किया। वे तीनों एक दूसरे को जानते न थे। तीनों बरामदे से सटे हुए कमरे में पहुँचे। बातचीत के दौरान भूतों का प्रसंग छिड़ गया।

रंगनाथ भूतों के अपने उनुभव यों सुनाने लगा : बात उन दिनों की है, जब मैं नौकरी की खोज़ में सारे गाँव छान रहा था। मैं एक दिन शाम को एक गाँव की सराय में ठहर गया। सवेरा होने के पहले शहर पहुँचने के ख्याल से मैं बहुत ही तड़के उठकर चल पड़ा। सराय में आराम करनेवाले यात्रियों ने मुझे रोकना चाहा। बताया कि रास्ते में श्मशान के निकट एक इमली के पेड़ पर एक भूत निवास करता है और वह राह चलनेवालों को तंग करता है। मगर मैं भूत-प्रेतों पर विश्वास नहीं करता था। इसलिए हिम्मत करके चल पड़ा। श्मशान तक पहुँचते-पहुँचते उल्लुओं की चिल्लाहटें और सियारों की सीटियाँ सुनायी दीं। ज्यों ही मैं इमली के पेड़ के पास पहुँचा, त्यों ही घने पेड़ की शाखाएँ हिल उठीं। मुझे पहले थोड़ा-सा डर लगा। डालों के बीच सफ़ेद वस्त्रवाली कोई आकृति, शायद कोई भूत हो, भयंकर रूप से चिल्ला उठी– "कौन है वह? इस ओर आने की ऐसी हिम्मत?" मेरे बदन में पसीना छूटने

अर्जुन सिंह

लगा। फिर भी हिम्मत करके बोला– "मैं भी एक भूत हूँ! समझें।" तब शाखाओं के भीतर से कोई भयंकर चिल्लाहट सुनाई दी और दूसरे ही क्षण कोई पेड़ पर से धम्म से नीचे गिर पड़ा। सारी हालत मेरी समझ में आ गई। वह कोई भूत का अभिनय करते लोगों को डरा रहा है! मैं उसे अपने कंधे पर उठाकर गाँव में पहुँचा और उन्हें सारा वृत्तांत सुनाकर कहा–"लो, देखो! तुम लोगों को तंग करनेवाला भूत यही है!" लोगों ने भूत से पिंड छूट जाने की खुशी में तत्काल चन्दा वसूल करके मुझे दिया।"

इसके बाद मंगलनाथ ने अपना अनुभव यों सुनाया: "नौकरी करते मैंने शहर को अपना स्थिर निवास बनाया। पर रहने के लिए मैंने कोई मकान ठीक नहीं किया। उस शहर के एक कोने में एक उजड़ा हुआ खपरैलवाला मकान था। लोग उसे भूतों का घर कहकर पुकारा करते थे। मैं भूतों से डरता न था। इसलिए मैंने उस मकान में रहने का निश्चय कर लिया। एक दिन रात को खाना खाकर मैं भीतर से कुंडी चढ़ाकर निश्चिंत सो गया। आधी रात के वक्त कोई आहट पाकर मेरी आँख खुल गई। भीतर से घुंघुरों की आवाज सुनाई दी। सर उठाकर देखा, कोई छाया हिलती हुई सी नजर आई। पहले डर लगा। फिर ध्यान से देखा, बाहर से नारियल के पेड़ की टहनियों की छाया चांदनी के कारण भीतर हिल रही थी। थोड़ी हिम्मत करके भीतर के कमरे में जाकर देखा। सैकड़ों की संख्या में चूहे दौड़ रहे हैं। मुझे देखते ही एक पालतू बिल्ली 'म्याव' 'म्याव' कहकर चिल्ला उठी। उसके पैरों में घुंघरू बंधे हुए थे। बड़ी आवाज करते बिल्ली खिड़की में से बाहर भाग गई। उस घर के मालिक ने इस ख्याल से मुझसे किराये तक लिये बिना वह मकान मुझे सौंप दिया था कि कम से कम उस
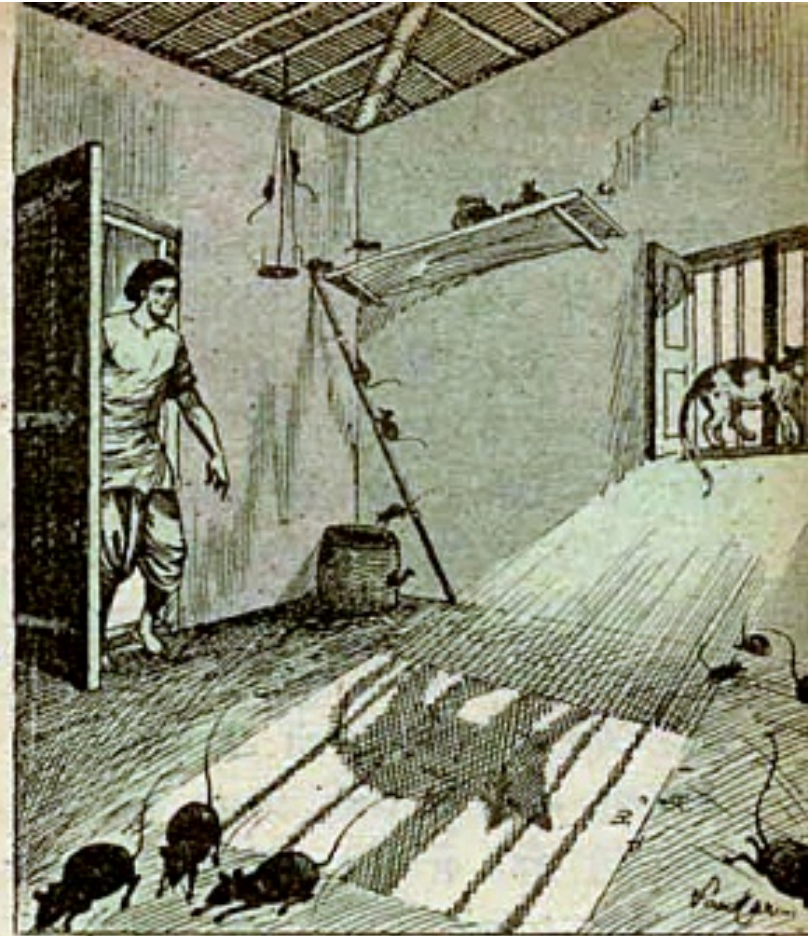
मकान में कोई रोशनी करनेवाला तो मिल गया है! पर वास्तव में वहाँ पर न भूत थे और न शैतान! वह केवल भ्रम था, भ्रम!"

अंत में राजनाथ ने अपना अनुभव सुनाया: "एक दिन मैंने गली से गुजरते एक मकान के सामने कई लोगों को इकट्ठे हुए देखा। सुना कि उस घर की एक युवती में भूत ने प्रवेश कर लिया है। कोई ओझा को बुला लाने की सलाह दे रहा था। पर मैं भूतों से डरता न था। मैंने उन लोगों को बताया–"इस छोटी-सी बात के लिए ओझा को क्यों कष्ट देते हो? मैं खुद पल भर में भूत को भगा सकता हूँ।" इन शब्दों के साथ पागल की तरह बकनेवाली उस युवती को एक कमरे के भीतर ले गया और उसके गाल पर ज़ोर का तमाचा मारकर पूछा–"बताओ, तुम यह स्वांग क्यों रचती हो? वरना मैं तुम्हारे पैर तोड़ दूंगा!" यों मैंने उसे धमकी दी। वह युवती फूट-फूटकर रो पड़ी और बोली–"मैं क्या करूँ? मुझे यह स्वांग जान-बूझकर रचना पड़ा। मेरी सौतेली माँ मुझे तंग करती है, इस वक़्त वह मुझे एक बीमार बूढ़े के गले मढ़ना चाहती है। उससे बचने के लिए मैं यह नाटक कर रही हूँ।" मैंने उस युवती को नाहक़ पीटा था। इस पर पछताते हुए कहा–"यदि तुम को कोई आपत्ति न हो तो मैं तुम्हारे साथ शादी करूँगा।" इसके बाद मैंने उस कन्या के साथ विवाह किया भी। इसलिए भूतों का प्रवेश करना सफ़ेद झूठ है! असल में भूत हो न, जो कि मनुष्यों के भीतर प्रवेश कर सके!

इस बीच बाहर की वर्षा थम गई, तीनों व्यक्ति उस कमरे के तीन कोनों में दुबक कर लेट गये और तुरंत सो गये। नींद से जागकर उन लोगों ने देखा, सवेरा हो चुका था!

वहाँ पर न बूढ़ी थी और न खपरैल का मकान ही था। वे तीनों श्मशान में एक बड़ी समाधि पर बैठे हुए थे!

माधो की ईमानदारी

गजपति नगर के निकट एक गाँव में माधो नामक एक युवक रहा करता था। वह सवेरे जागते ही कुल्हाड़ी ले जंगल में पहुँच जाता, लकड़ी क़ाटकर बाजार में बेच देता। इस तरह वह रोज कम से कम दो रुपये कमा लेता। एक रुपया अपनी माँ को खर्च के लिए दे देता और दूसरा रुपया निजी खर्च के लिए रख लेता। दुपहर के बाद वह अच्छी पोशाकें पहनकर गजपति नगर की गलियों में घोड़े पर सवारी करता। उसे देख लोग समझते कि यह कोई बड़ा धनी है और उसे "माधो प्रभु" कहकर पुकारा करते थे।

एक बार एक विदेशी व्यापारी क़ीमती जरीदार वस्त्रों का गट्टर ले आया। पर वह गजपति नगर में एक भी साड़ी बेच न पाया। क्योंकि उसके पास एक हज़ार रुपयों की कम क़ीमती कोई साड़ी न थी। उसका माल देखकर लोग यही कहने लगे कि "ऐसा माल माधो प्रभु को छोड़ कोई खरीद न पायेगा।"

व्यापारी ने लोगों के द्वारा माधो प्रभु के आने का समय जान लिया और उसकी प्रतीक्षा करने लगा। ज्यों ही माधो घोड़े पर आया, उसे रोककर विनयपूर्वक व्यापारी ने अपनी हालत बताई और निवेदन किया कि कम से कम एक वस्तु को ही सही खरीदकर उसके श्रम का फल दिलवा दे।

माधो ने बड़े दर्प के साथ एक साड़ी और चोली का एक टुकड़ा चुनकर अलग रखते हुए कहा—"मैं कल यहीं पर इसी वक़्त आ जाऊँगा। तब इन्हें खरीदकर इनका मूल्य चुका दूँगा।"

लेकिन माधो ने व्यापारी को जो वचन दिया था, उसका पालन करना संभव न

महेन्द्र जोशी

दूसरे दिन सवेरे माधो ने रोज की भांति लकड़ी काटकर बेच डाली। दुपहर के बाद "माधो प्रभु" के वेष में घोड़े पर ठाठ से गजपति नगर पहुँचा और व्यापारी के यहाँ से १५०० रुपये में एक साड़ी और चोली का कपड़ा खरीदा।

इसके बाद माधो के सामने यह समस्या उत्पन्न हुई कि इन वस्त्रों को क्या करें? उसे स्मरण आया कि विक्रमपुरी की राजकुमारी बड़ी रूपवती है। फिर क्या था, उस व्यापारी के हाथ से ही साड़ी व चोली की अच्छी तरह से पोटली बनवाई और व्यापारी से कहा-"सुनिये, महाशय! आप विक्रमपुरी जाकर इन्हें वहाँ के राजा के हाथ सौंप दीजिए और उन्हें यह संदेशा दीजिए कि गजपति नगर के ईमानदार दत्त युवराज ने राजकुमारी के वास्ते इन्हें उपहार स्वरूप भेज दिया है।" इस कार्य को संपन्न करने के लिए मार्ग-व्यय के मद्दे माधो ने उस व्यापारी को पाँच सौ रुपये दिये।

व्यापारी माधो के कथनानुसार विक्रमपुरी पहुँचा और साड़ी तथा चोली वहाँ की राजकुमारी को सौंप दी। उन्हें देख राज कुमारी बहुत प्रसन्न हुई और व्यापारी के हाथ एक रत्न देकर उसे उपहार देनेवाले व्यक्ति को भेंट स्वरूप देने का अनुरोध किया।

व्यापारी पुनः गजपति नगर लौट आया और नगर की गलियों में माधो से
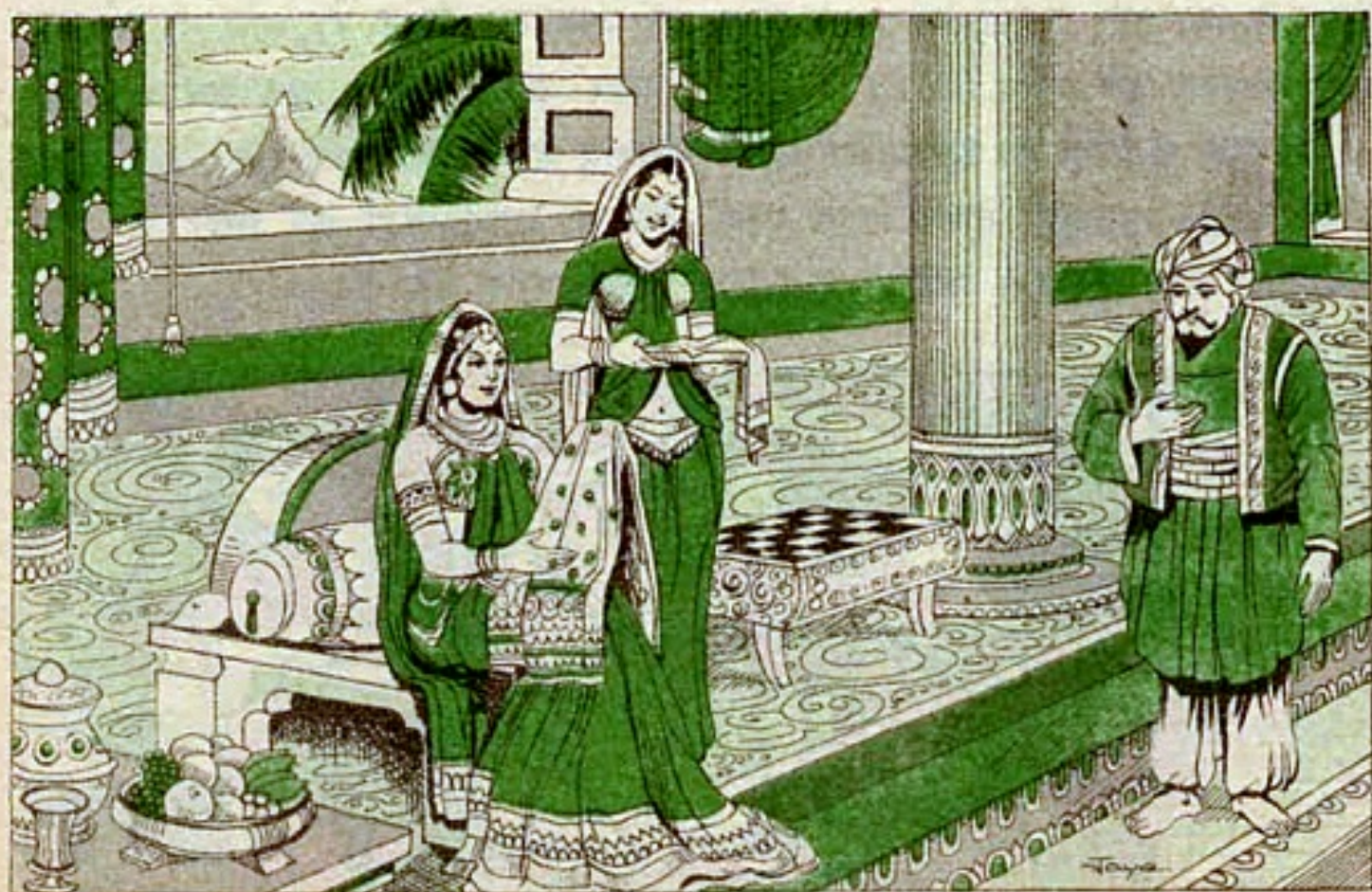
सूझ की बात

प्राचीन काल में कांतिपुर नामक नगर में एक मशहूर न्यायाधीश था। दूर दूर से उसके पास लोग न्याय के वास्ते आने लगे।

न्यायाधीश का यश राजा तक पहुँचा। राजा उसके दर्शन करके न्यायाधीश का अभिनंदन करने स्वयं चल पड़े।

न्यायालय के बाहर लोगों की भारी भीड़ थी। उस दृश्य को देख राजा विस्मय में आ गये और न्यायाधीश से बोले–"महाशय, यह बड़े ही आश्चर्य की बात है कि आपके न्याय के प्रति इतने सारे लोगों का विश्वास है। आप जैसे न्यायाधीश मेरे देश में हैं; इस बात का मैं गर्व करता हूँ।"

न्यायाधीश ने हंसकर उत्तर दिया–"इस प्रकार हज़ारों लोगों को न्याय दिलाने की अपेक्षा यह बहुत बड़ी बात होगी कि इन लोगों को अन्याय के शिकार होने से बचा ले। वास्तव में नगर में अन्याय दिन-प्रति दिन बढ़ते जा रहे हैं! इन्हें रोकना चाहिए।"

फिर क्या था, राजा में ज्ञानोदय हुआ और नगर में होनेवाले अन्यायों का पता लगाकर उन्हें रोकने के लिए राजा ने कड़ी कार्रवाई की।
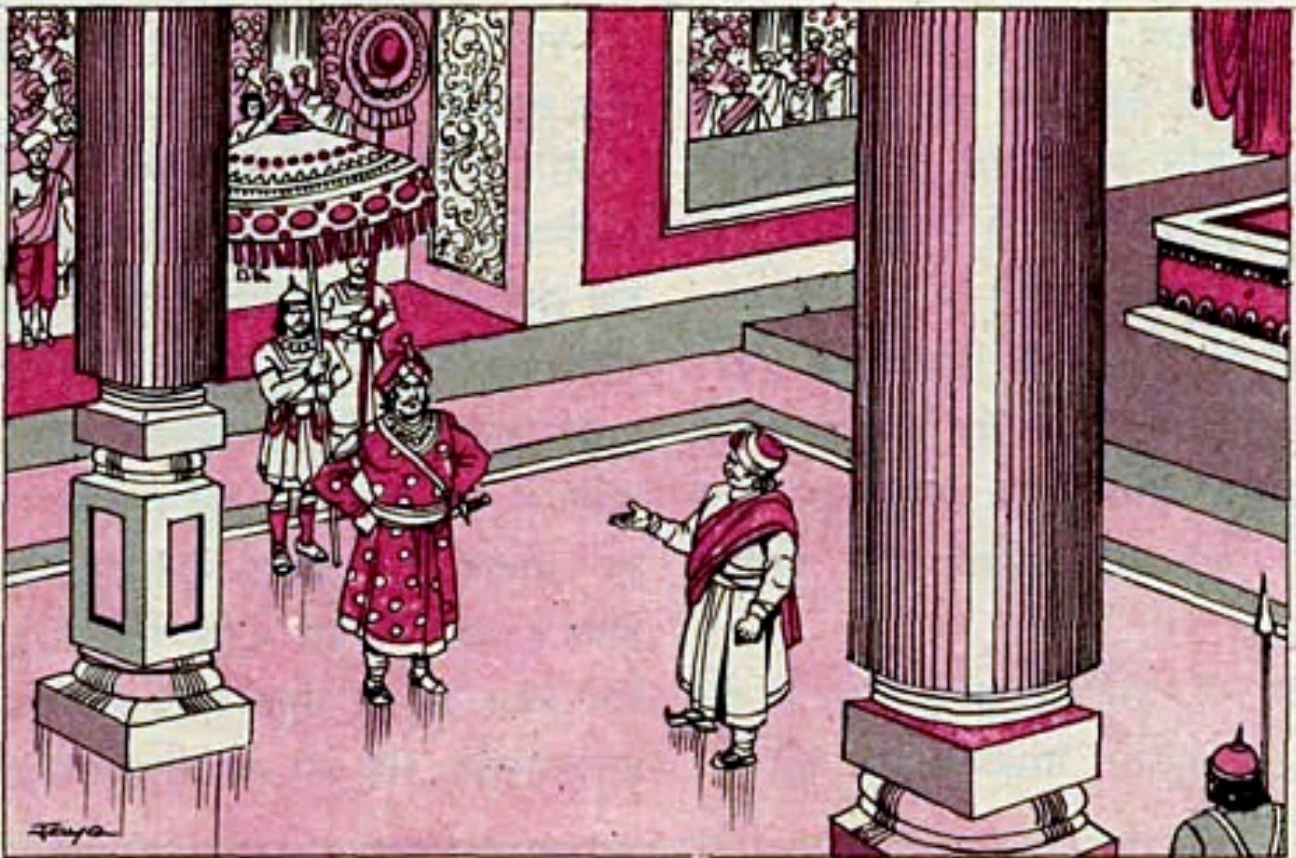
तीन मित्र

एक गाँव में राम, भीम और सोम नामक तीन मित्र थे। वे पढ़े-लिखे थे और आराम से जीने के लिए उनके पास पर्याप्त जमीन-जायदाद भी थी। फिर भी वे संतुष्ट न थे और किन्हीं अज्ञात सुखों की कल्पना करके वे परेशान रहने लगे।

उन्हीं दिनों में उन्हें मालूम हुआ कि उस गाँव के समीप के एक भयंकर जंगल में एक मुनि रहा करते हैं और उनके दर्शन करने पर वे अपार संपत्तियों से भरी गुफा का मार्ग बतायेंगे।

फिर क्या था, तीनों मित्र अनेक प्रकार की यातनाएँ झेलते आखिर मुनि के आश्रम में पहुँचे। उन्हें प्रणाम करके गुफा तक पहुँचने का मार्ग बताने का निवेदन किया।

मुनि ने उन्हें समझाया–"बेटे! उस गुफा तक पहुँचना साधारण बात नहीं है। रास्ते में असख्य खूंख्वार जानवर हैं। गुफा के भीतर अनेक काल सर्प हैं। तुम लोग आज रात को मेरे ही आश्रम में विश्राम कर लो और कल अपना निर्णय सुनाओ।" इन शब्दों के साथ मुनि ने तीनों को तीन कुटियाँ दिखाईं और उनकी परिचर्या करने के लिए अप्सराओं जैसी तीन कन्याओं को नियुक्त किया।

राम और भीम ने अपनी परिचर्या करनेवाली स्वयंप्रभा तथा रत्नमाला को देख मुग्ध हो सोचा कि उनके साथ विवाह करने पर उनके जीवन सार्थक हो जायेंगे। नाहक धन के लोभ में पड़कर गुफा की खोज में जाते रास्ते में खूंख्वार जानवरों का आहार बन जाना मूर्खतापूर्ण कार्य होगा। यही निश्चय करके मुनि से दूसरे दिन अपने मन की बात बताई। मुनि ने प्रसन्नतापूर्वक राम को स्वयंप्रभा तथा भीम

को रत्नमाला सौंप दी और उन्हें अनेक रत्न देकर खुश करके भेज दिया।

सोम की सेवा करनेवाली कन्या भी रूपवती थी, पर वह सोम के मन को अधिक आकृष्ट न कर पाई। क्योंकि उसका मन गुफा में स्थित रत्नों के ढेर पर लगा था। यह बात ताड़कर मुनि ने सोम को गुफा तक पहुँचने का मार्ग बताया और सचेत किया-"बेटा! तुम बड़ी सावधानी से अपनी आत्मरक्षा करो।"

सोम सकुशल गुफा तक पहुँचा। गुफा से उसने इतने सारे मणि-माणिक लिये, जितने वह खुद ढो सकता था, लेकर वापस चल पड़ा। परंतु वह अपने गाँव को नहीं लौटा, बल्कि एक नगर में विशाल महल बनवाकर दास-दासियों के साथ वैभवपूर्ण जीवन व्यतीत करने लगा।

थोड़े दिन तक तीनों ने तृप्ति के साथ अपने दिन बिताये। मगर धीरे धीरे राम और भीम के मन में अपने जीवन के प्रति असंतोष बढ़ता गया। (राम को लगा कि भीम की पत्नी उसकी पत्नी की अपेक्षा ज्यादा सुंदर है। इसी प्रकार भीम को लगा कि राम की पत्नी भीम की पत्नी से अधिक सुंदर है।)

एक दिन दोनों में जब मुलाक़ात हुई, तब यह निश्चय किया-"हम दोनों से

सोम कहीं अधिक क़िस्मतवर है। चलो, एक बार उसको देख आवे।"

दोनों ने सोम के घर जाकर देखा, वह महल एक राज भवन जैसा अद्भुत था। वहाँ की दासियाँ अप्सराओं को मात करनेवाली थीं। मगर सोम के चेहरे पर उन्हें प्रसन्नता दिखाई नहीं दी।

राम और भीम ने एक सप्ताह सोम के महल में बिताया, तब कहा-"हम मुनि के आश्रम में जा रहे हैं।" सोम ने भी उन्हें बताया कि उसे भी मुनि से जरूरी बात करनी है, इसलिए वह भी उनके साथ चल देगा।

तीनों मुनि के आश्रम में गये। मुनि ने तीनों के चेहरों पर असंतोष देखा। तीनों

को अलग-अलग कुटिया देकर प्रत्येक से उनकी समस्या के संबंध में चर्चा की।

राम ने मुनि से कहा–"महानुभाव, आप ने मुझे गुफा में जाने से डराया, सुंदर रत्नमाला को भीम को सौंप दिया और मुझे एक साधारग युवती स्वयंप्रभा को सौंपा।"

भीम ने भी इसी प्रकार अपना असंतोष प्रकट किया कि सोम की भांति उसे अपार संपत्ति हाथ न लगी और स्वयंप्रा जैसी रूपवती उसकी पत्नी न बन सकी, बल्कि एक साधारण युवती रत्नमाला उसकी पत्नी बन गई।

अंत में सोम ने कहा–"मुनिवर! अपार संपत्ति के कारण मैं सुख और शांति से दूर हो गया हूँ। मेरे जो आत्मीय बने हैं, वे सब केवल मेरी संपत्ति के कारण ही बने हैं। आप ने मुझे गुफा में जाने से क्यों नहीं रोका? मेरा जन्म तो निरर्थक बन गया है।"

इसके बाद मुनि ने तीनों को एक साथ अपने आश्रम में निमंत्रित किया और समझाया–"तुम लोगों ने स्वयं जो निर्णय कर लिये, उनके परिणाम मुझ पर थोप दिया है। तुम में से किसी को भी मैंने गुफा में जाने से मना नहीं किया है। अपनी अपनी पत्नियों का चुनाव भी तुम लोगों ने खुद कर लिया है। फिर भी तुम लोग संतुष्ट नहीं हो। यद्यपि तुम लोग केवल संतोष और तृप्ति चाहते हो तो तुम्हारे पास जो कुछ है, उससे संतुष्ट रह सकते थे। मेरे पास आने की तुम्हें कोई ज़रूरत ही न थी। अब भी कुछ बिगड़ा नहीं है। तुम लोग अपने विचार बदलकर जो कुछ है, उससे संतुष्ट होना सीख लो।"

जब राम और भीम को इस सत्य का बोध हुआ कि उनकी पत्नियाँ दूसरों की आँखों में सुंदर लग रही हैं, तब उन्होंने अपनी अपनी पत्नियों के सौंदर्य का अनुभव किया। इसके बाद सोम ने भी अपने मन पसंद की कन्या के साथ विवाह किया और सुख-भोगों को तिलांजली देकर एक साधारण व्यक्ति की भांति अपने दिन बिताने लगा।
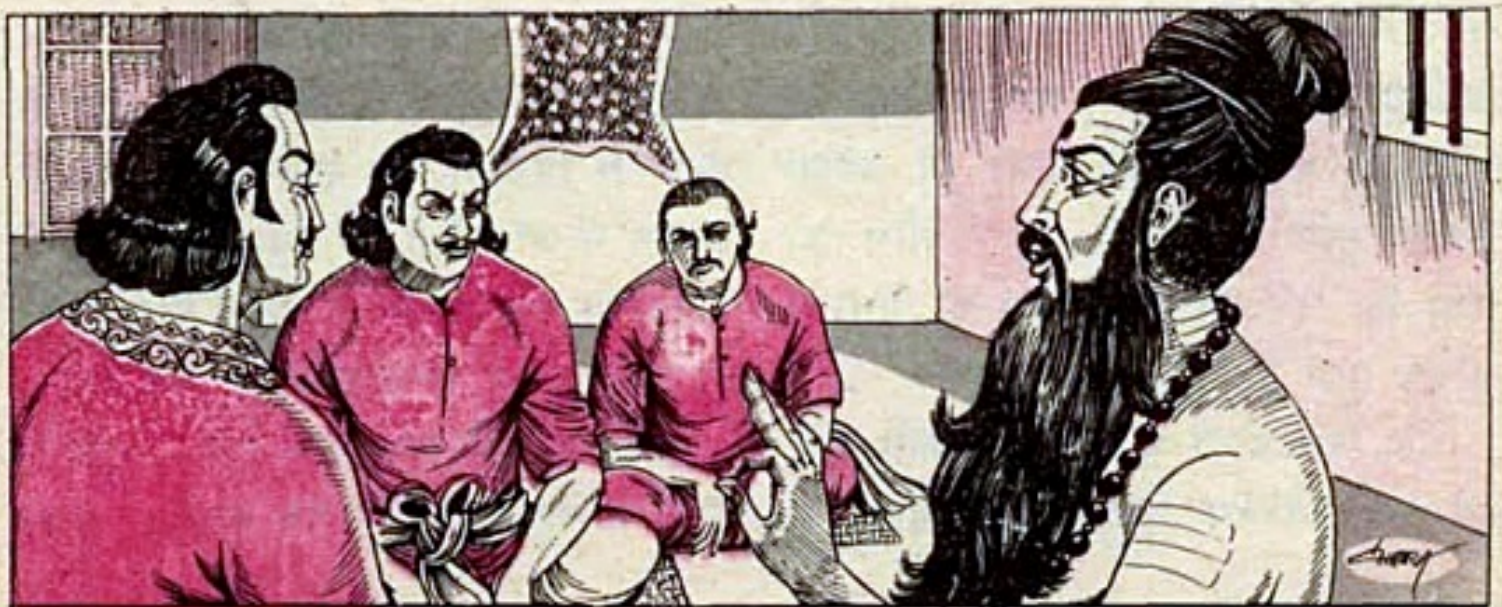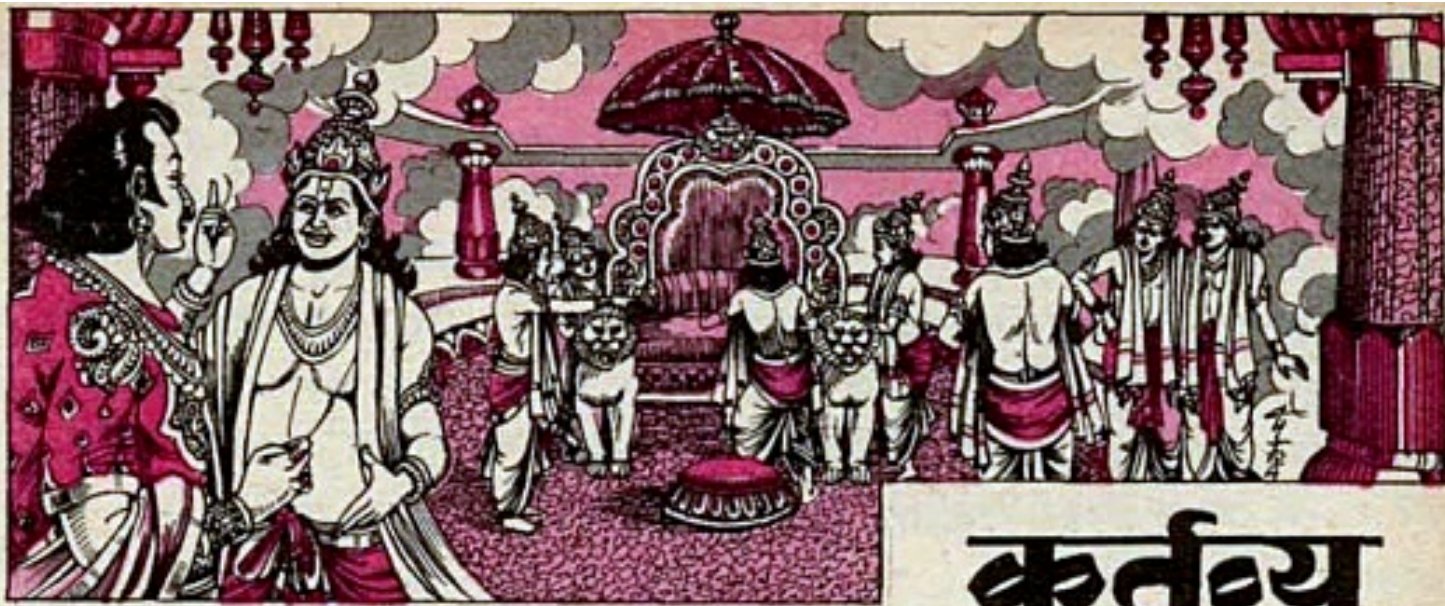
कर्तव्य

राजा चित्रकेतु दान कर्ण नाम से प्रसिद्ध था। वह अपने राज्य के गरीबों में इस प्रकार दान बांट रहा था जिससे वे किसी भी प्रकार की कठिनाइयों का अनुभव न करें। उसका पड़ोसी देश मालव का राजा माधववर्मा चित्रकेतु का जानी दुश्मन था। जब तब मौक़ा पाकर माधववर्मा चित्रकेतु के राज्य पर हमला कर बैठता, बुरी तरह से हारकर वापस लौटता था।

एक बार मालव देश में भयंकर अकाल पड़ा। देश के भीतर हाहाकार मच गया। पर माधववर्मा ने अपनी प्रजा की तक़लीफ़ों की कोई परवाह न की। इस कारण मालव की प्रजा चित्रकेतु के राज्य में शरणार्थी बनकर आने लगी। चित्रकेतु ने उन्हें खाने-पीने व ठहरने का उचित प्रबंध किया। आखिर माधववर्मा के सैनिक भी चित्रकेतु के आश्रय में आ गये।

एक दिन रात को राजा चित्रकेतु ने एक सपना देखा। उस सपने में राजा एक दिव्य भवन में टहल रहा था। देवता जैसे व्यक्ति उस भवन में कालीन बिछाकर रत्न खचित एक सिंहासन सजा रहे थे।

चित्रकेतु ने उनके समीप जाकर पूछा— "आप लोग किसके वास्ते यह सिंहासन सजा रहे हैं? इस पर विराजमान होनेवाले वह दिव्य पुरुष कौन हैं?"

उन लोगो ने बताया—"हमने सुना है कि पृथ्वीलोक में चित्रकेतु नामक राजा गरीबों के लिए एक कल्पवृक्ष सम बने हुए हैं। उन्हें एक बार यहाँ पर निमंत्रित करके उनका सम्मान करना चाहते हैं। इसी के वास्ते ये तैयारियाँ हो रही हैं।"

सपने की समाप्ति पर राजा परमानंदित हो उठ बैठा। उसे आश्चर्य हुआ कि

रमेश श्रीवास्तव

उसकी दानशीलता की देवता तक प्रशंसा कर रहे हैं। इसलिए उसे लगा कि और अधिक दान-पुण्य करके देवताओं की प्रशंसा ज्यादा प्राप्त कर लेनी चाहिए। इस विचार के आते ही राजा चित्रकेतु ने अपने सिपाहियों को आदेश दिया कि वे रोज़ एक हज़ार लोगों को दरबार में हाज़िर करें। इस प्रकार राजा रोज़ एक हज़ार लोगों में सोना बांटता गया।

इसका परिणाम यह हुआ कि जनता तो धनी बन गई, पर जनता के उपयोगी कार्यक्रमों को अमल करने के लिए खजाने में धन न रहा। लोग जुआ खेलने, शराब पीने इत्यादि बुरे व्यसनों के शिकार हो गये। काम-वाम करना उन लोगों ने छोड़ दिया। वस्तुओं का उत्पादन घट गया। उद्योग बंद हुए। जनता में धन का प्रचलन ज्यादा होने के कारण चीज़ों का दाम बढ़ा। देश के भीतर आपत कालीन स्थिति उत्पन्न हुई। परंतु चित्रकेतु ने इस पर ध्यान न दिया, वह देवताओं के द्वारा किये जानेवाले सम्मान के सपने देखने लगा।

थोड़े दिन बाद राजा चित्रकेतु ने एक और सपना देखा। इस बार भी वही दिव्य भवन और वही सिंहासन प्रत्यक्ष हुए। पर इस बार उन लोगों ने सिंहासन की बगल में ठोकरी भरकर गोबर ला रखा था। सिंहासन पर कंटीली झाड़ी डाल दी थी। सिंहासन के बाजू में एक मेज़ पर चाबुक था।

चित्रकेतु ने आश्चर्य में आकर पूछा— "यह सब क्या है?" उन लोगों ने उत्तर दिया—"चित्रकेतु नामक राजा ने बिना विवेक के दान करके जनता को आलसी बनाया और वे अपने कर्तव्य को भूलकर पाप कर बैठे। इसलिए उन्हें दण्ड देने के लिए यह इंतजाम किया जा रहा है।"

राजा डर के मारे चिल्ला उठा और जाग पड़ा, उसे अपनी मूर्खता मालूम हुई। इसके बाद वह पूर्ववत जनता के हित को दृष्टि में रखकर राज्य-शासन करने लगा।

मानसिक शांति

अयोध्या के राजा मिशुमंत भागवत के प्रति बड़ी अभिरुचि रखते थे। उनका मन विकल था, इसलिए उन्होंने भागवत सप्ताह मनाया। याने एक पंडित के द्वारा एक सप्ताह तक भागवत का पठन कराकर भारी भोज दिया।

फिर भी राजा के मन को शांति न मिली; इस पर राजा ने पंडित से पूछा—"आख़िर इसका कारण क्या है?" पंडित ने सोचा कि राजा उसे दण्ड देंगे। तब उसने राजा से अनुरोध किया कि उसे एक खंभे से बंधवा दे, इस कार्य के संपन्न होने पर पंडित ने राजा को भी खंभे से बंधवा देने को कहा। तब पंडित ने राजा से पूछा—"महाराज, मैं अनेक कठिनाइयों में फँसा हुआ हूँ। आप कृपया मुझे बंधनों से मुक्त कीजिए।" इस पर राजा ने कहा—"पंडितजी, आपकी बातों का कोई मतलब भी है? मैं भी बंधा हुआ हूँ, ऐसी हालत में मैं आपको बंधनों से मुक्त कैसे कर सकता हूँ?"

"महाराज! ठीक इसी प्रकार आपका भी मेरे द्वारा मानसिक शांति प्राप्त करना है! हम दोनों सांसारिक यातनाओं में फँसे हुए हैं। आपको संतुष्ट करके धन पाने की मेरी कामना है। भागवत का श्रवण कर आप मानसिक शांति पाने की कामना रखते हैं। जो इन कामनाओं से मुक्त होता है, वही दूसरों को विमुक्त कर सकता है।" पंडित ने स्पष्ट समझाया।
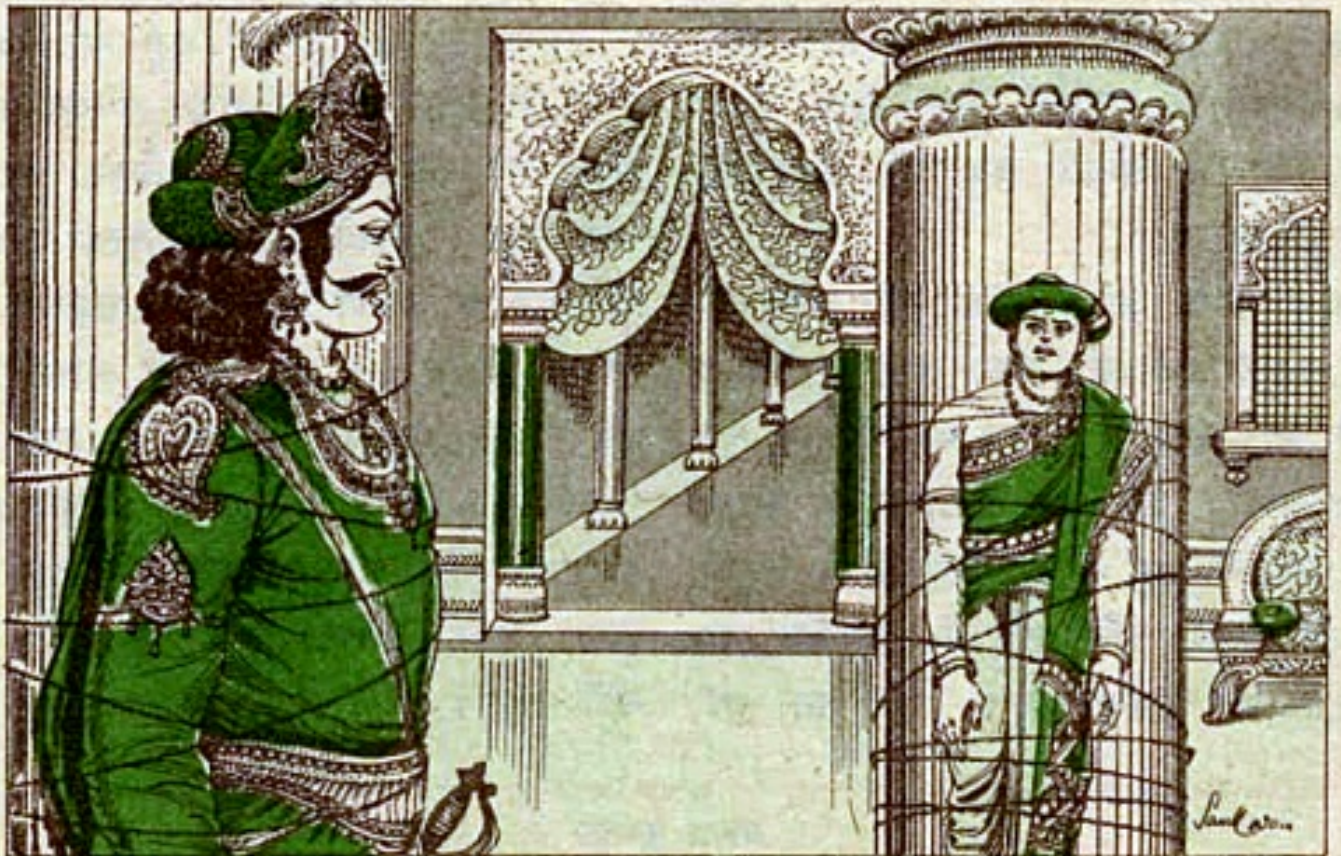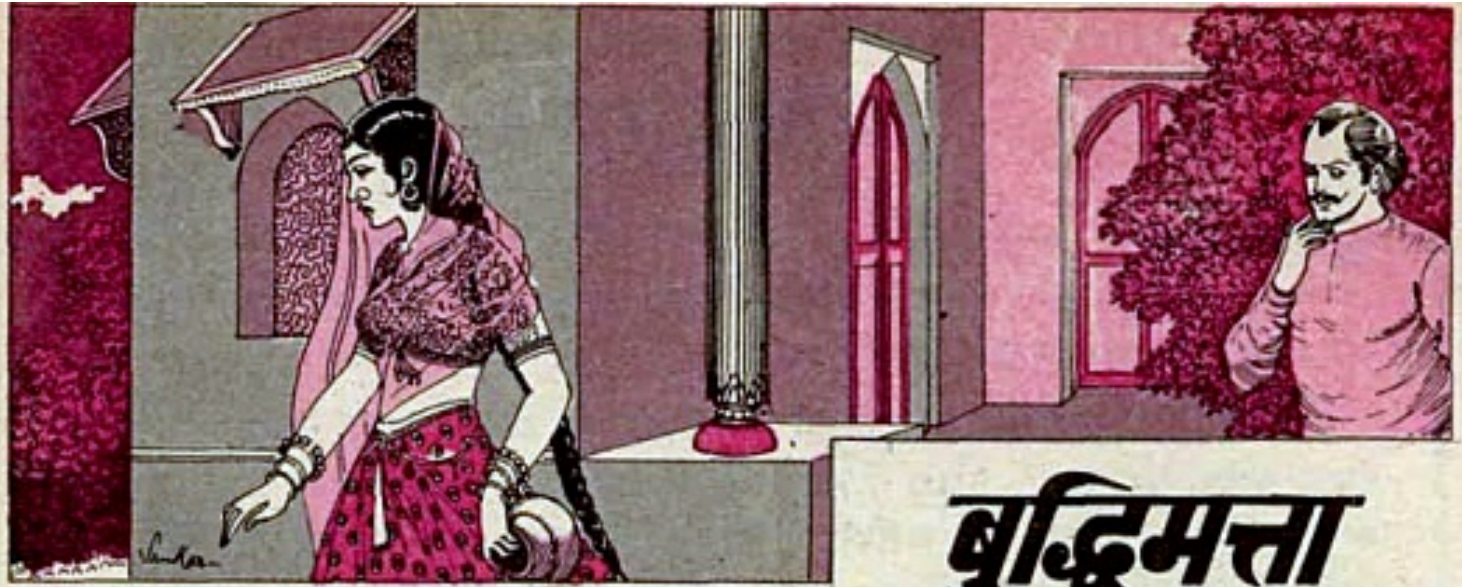
बुद्धिमत्ता

रत्नाकर नंदनपुर का एक बड़ा व्यापारी था। उसका इकलौता बेटा अजित सेन था। चित्रावती नगर के एक धनाढ्य की पुत्री शीलवती अत्यंत ही सुंदर, गुणवती तथा बुद्धिमती थी। यह समाचार मिलते ही रत्नाकर ने अपने पुत्र अजित सेन के साथ शीलवती का विवाह किया। शीलवती की सुंदरता और बुद्धिमत्ता पर अजित सेन मुग्ध था। पर रत्नाकर अपनी बहू पर निगरानी रखे हुए था।

एक दिन आधी रात को शीलवती एक खाली घड़े को लेकर घर से निकल पड़ी और बड़ी देर बाद खाली हाथ घर लौट आई। इसे देख रत्नाकर ने सोचा कि उसकी बहू बड़ी साहसी है, ऐसी युवती दोनों परिवारों के अपयश का कारण बन सकती है। फिर क्या था, दूसरे दिन रत्नाकर ने अपने पुत्र से कहा—"बेटा, थोड़े दिन के लिए तुम अपनी बहू को उसके मायके भेज दो।" पुत्र ने बताया—"पिताजी, शीलवती तो यहाँ पर सुखपूर्वक तो है!" पर रत्नाकर ने हठ किया कि चन्द दिनों के लिए उसे अपने मायके भेज देना ही उचित होगा।

इसके उपरांत अपनी बहू को मायके भेजने की जिम्मेदारी रत्नाकर ने स्वयं अपने ऊपर ली और उसे साथ लेकर घर से चल पड़ा। रास्ते में एक नाला पड़ा। रत्नाकर ने अपनी बहू को समझाया कि चप्पल उतार कर हाथ में ले नाला पार करे। पर बहू ने चप्पलों के साथ ही नाला पार किया। बहू ने उसकी बात न मानी, इस पर रत्नाकर को दुःख तो हुआ, मगर उसने प्रकट रूप से कुछ नहीं कहा।

नरेन्द्र कुमार

थोड़ी दूर आगे बढ़ने पर पकी फ़सल का एक खेत देख रत्नाकर बोला–"वाह, बहुत ही बढ़िया फ़सल हुई है। इस खेत के मालिक को इस साल बड़ा लाभ होगा!"

"सारी फ़सल खा न डाले तब न?" बहू ने झट से कह दिया।

रत्नाकर को इस बात का आश्चर्य हुआ कि उसकी बहू बेतुके जवाब देती है। लेकिन लोग उसे अक़्लमंद और बुद्धिमती कैसे मानते हैं?

फिर दोनों आगे बढ़े। जब वे एक नगर से होकर जाने लगे, तब उसकी सुंदरता पर मुग्ध हो रत्नाकर बोला–"ओह, यह नगर कैसा सुंदर है?"

"दुश्मन अगर इसे उजाड़ न डाले तो!" शीलवती ने तपाक से जवाब दिया।

थोड़ी दूर की यात्रा के बाद रत्नाकर थक गया और रास्ते में एक बरगद की छाया में आराम करने के लिए बैठ गया। शीलवती पेड़ से दूर जा बैठी।

रत्नाकर ने सोचा–"यह तो जिद्दी और मूर्खा है। बड़ों की बातों की बिलकुल परवाह नहीं करती। इसे मायके में छोड़ आने पर मेरे पुत्र का पिंड छूट जाएगा।"

इसके बाद वे एक बैल गाड़ी में थोड़ी दूर तक यात्रा करके एक गाँव में अपने परिचितों के घर टिक गये। भोजन करके बाहर विश्राम भी किया। रत्नाकर
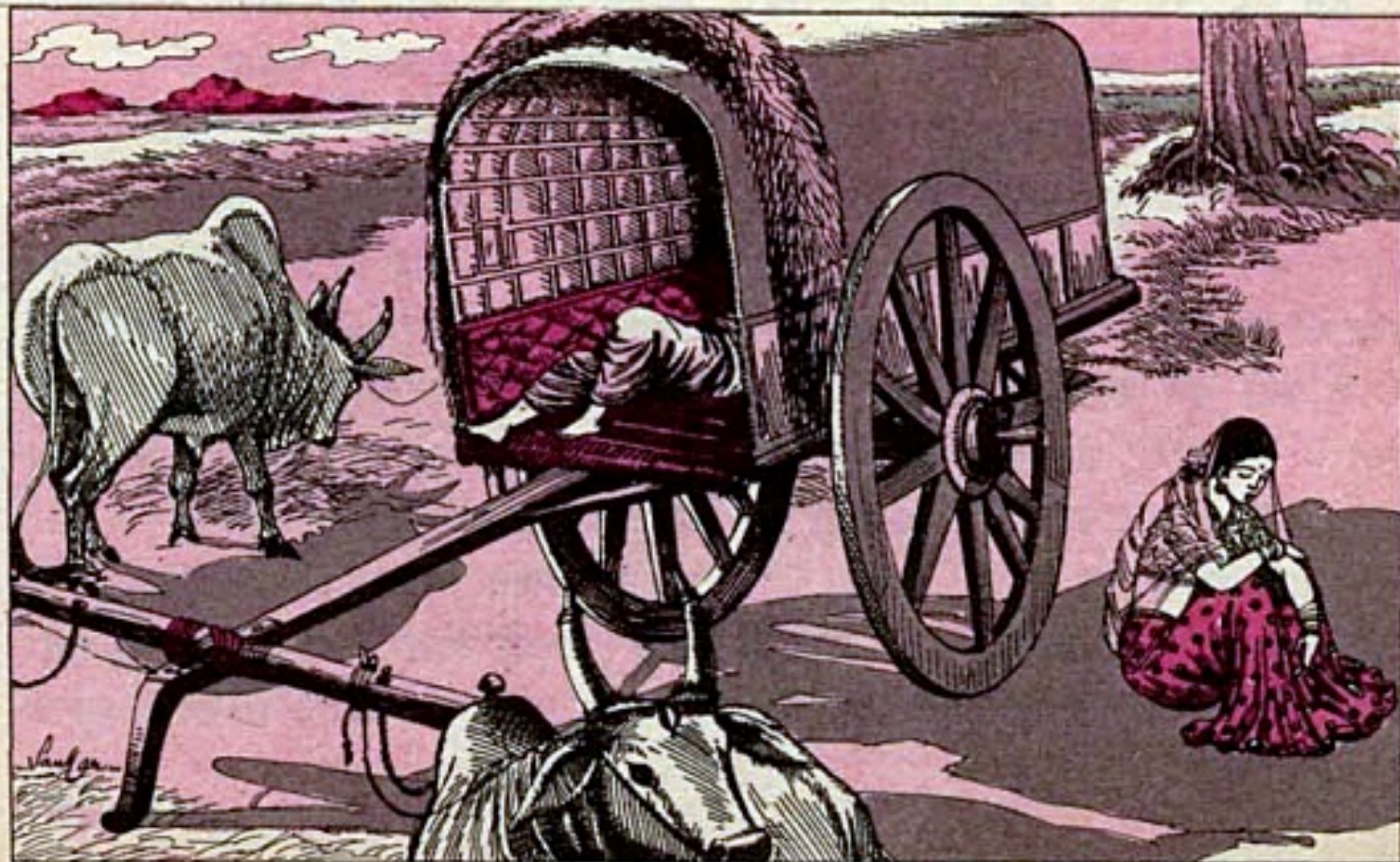
गाड़ी में लेट गया, पर शीलवती गाड़ी की छाया में जा बैठी।

उस वक़्त पेड़ पर बैठा कौआ बराबर कांव-कांव करने लगा। इसपर शीलवती बोली–"हे कौए! तुम क्यों चिल्लाते हो? एक भूल करके मुझे घर छोड़ना पड़ा, दूसरी भूल कर बैठूं तो शायद मैं अपने पति को चेहरा दिखाने लायक़ न रहूँगी।"

ये बातें सुन रत्नाकर आश्चर्य में आ गया। गाड़ी से उतरकर बहू के पास पहुंचा और पूछा–"बहूरानी! तुम्हारी इन बातों का क्या मतलब है?"

"पिताजी! क्या बताऊँ? सुगंध होने के कारण ही चन्दन को लोग घिसा देते हैं। इसी प्रकार मेरे विशेष गुण ही मेरे दुश्मन बन बैठे हैं। मैं पक्षियों तथा जानवरों की बोली जानती हूँ।" शीलवती ने जवाब दिया।

रत्नाकर ने सोचा कि शायद उसकी बहू पागल है, पर शीलवती कहती ही गई–"कुछ दिन पूर्व अर्द्ध रात्रि के समय एक मादा सियार चिल्ला रही थी कि नदी में एक औरत की लाश बही जा रही है। उस लाश में कई गहने हैं। यह आवाज़ सुनकर मैं खाली घड़ा ले नदी पर पहुँची। लाश को पानी में से बाहर निकाला, उसके आभूषण निकालकर घड़े में भर दिया। उस घड़े को एक जगह गाड़ दिया, तब लाश को सियार के खाने के लिए छोड़ मैं घर लौट आई, यह छोटी-सी भूल करने के कारण ही मैं आप की शंका का कारण बनी और इस हालत में पहुँची हूँ।"

यह जवाब सुनने पर रत्नाकर को आश्चर्य हुआ और साथ ही उसे अपनी बहू पर दया आ गई। शीलवती ने आगे कहा–"पर देखिए, पशु और पक्षियों की मुझ पर बड़ी कृपा थी। वह कौआ तब से चिल्ला-चिल्लाकर कह रहा है कि एक पेड़ के नीचे खजाना गड़ा हुआ है।"

उसी वक़्त रत्नाकर ने उस पेड़ के नीचे जाकर गड्ढा खोदा। उसे भारी खज़ाना मिला। रत्नाकर के मन में अपनी बहू के

प्रति अपार विश्वास और आदर का भाव पैदा हुआ। उसने शीलवती से कहा–"बेटी! मैं तुम्हें ठीक से समझ न पाया। इस बात का मुझे दुख है, अब चलो, घर चले।"

लौटती यात्रा आराम से हुई। रास्ते में जब वही बरगद का पेड़ दिखाई दिया, तब रत्नाकर ने पूछा–"तुम अपने मायके जाते वक़्त बरगद की छाया में क्यों नहीं बैठी?"

बहू ने जवाब दिया–"बरगद के खोखले में सांप होते हैं और पेड़ पर बैठी पक्षी मल गिराते हैं।" रत्नाकर ने हँसकर कहा–"हाँ, तुम ठीक कहती हो।"

इसके बाद शहर आ पड़ा। तब शीलवती स्वयं बोली–"इस नगर में यात्रियों की सुविधा के लिए एक भी सराय नहीं है। इसलिए यह बड़ी आसानी से दुश्मन के हाथों में चला जाएगा।"

इसके बाद पकी फ़सल का खेत आया, तब शीलवती ने कहा–"इस खेत का मालिक अपनी फ़सल को बेचकर उस धन का सदुपयोग करेगा, तो तभी कहा जा सकता है कि सचमुच उसे लाभ पहुँचा है।"

फिर थोड़ी दूर जाने पर नाला आ पड़ा। शीलवती बोली–"नाले में पत्थर होते हैं और जल जंतु भी। जैसे ज़मीन पर वे साफ़ दिखाई देते हैं, वैसे वे पानी में दिखाई नहीं देते। इसलिए पानी में चलते वक़्त अवश्य ही चप्पल पहनना चाहिए।"

इस पर रत्नाकर ने अपनी बहू की बुद्धिमत्ता की प्रशंसा की ।

अपनी पत्नी को घर लौटे देख अजित सेन बड़ा खुश हुआ । घर की जिम्मेदारी शीलवती को जब रत्नाकर ने सौंप दी, तब अजितसेन ने भांप लिया कि शीलवती रत्नाकर के विश्वास का पात्र बन गई है ।

उस समय उस देश का राजा अपने नये मंत्री की नियुक्ति करना चाहता था । इस ख्याल से देश के अनेक मेधावियों को बुला भेजा और उनसे मंत्रणा कर रहा था । इसी बात की गोष्ठी चल रही थी । इस तरह उनकी परीक्षा ली जा रही थी । अजितसेन भी अपनी पत्नी के साथ राजधानी पहुँचा और राजा की धर्मशाला में जा ठहरा । राजा ने अचानक मेधावियों से पूछा–"जो राजा पर लात मारता है, उसे कैसा दण्ड देना चाहिए ?"

मेधावी सब राजा की प्रशंसा प्राप्त करने के ख्याल से जवाब दे रहे थे कि इस राजद्रोह पर उसे कठिन दण्ड देना चाहिए, कोई कह रहा था कि उस अपराधी का शिरच्छेद करना चाहिए ।

उसी वक़्त अजितसेन धर्मशाला में दौड़कर पहुँचा और शीलवती को राजा का सवाल सुनाया ।

शीलवती ने अजितसेन को समझाया–"राजा पर कौन लात मारेगा ? श्रृंगार चेष्टा के समय पत्नी लात मारेगी या बच्चे लात मारेंगे । इसका दण्ड यह है कि उन्हें कोई दण्ड न देकर उनके साथ और अधिक प्यार करना चाहिए ।"

अजितसेन ने दरबार में लौटकर देखा कि लोग और तरह तरह के सुझाव दे रहे थे ।

थोड़ी देर वाद सब को मौन देख अजितसेन बोला–"महाराज ! राजा को लात मारनेवालों के प्रति और अधिक प्यार करना चाहिए ।"

फिर क्या था, अजितसेन को मंत्री का पद प्राप्त हुआ । इसके बाद शीलवती की मदद से राजा को अनोखी सलाहें देते हुए अजितसेन बड़ा मेधावी मंत्री कहलाया ।

फलों के चोर!

एक जमीन्दार ने कई किस्म के आम के पौधे मंगवा कर एक बगीचा लगवाया। कुछ महीनों के बाद पेड़ों से अच्छे-अच्छे फल निकले।

दूसरे दिन फल तोड़ने का निश्चय हुआ, मगर उसके पहले ही दिन बगीचे के माली ने जमीन्दार के पास जाकर कहा—"सरकार, गाँव के बच्चों ने हमारे बगीचे में घुसकर सारे फल खा डाले हैं।"

जमीन्दार ने दूसरे दिन गाँव के सारे बच्चों को बुलवा कर उनमें लड्डू बांटे। एक एक बच्चा दो दो लड्डुओं से ज्यादा न खा सके।

इस पर जमीन्दार ने माली से पूछा—"जब एक एक बच्चा दो दो लड्डुओं से ज्यादा न खा सके, तब क्या वे बगीचे के सारे फल खा डाले?"

माली ने जमीन्दार के पैरों पर गिर कर क्षमा मांगी और सारे फल ला दिये।

मूर्ख डाकू

फारस के एक शहर में रजाक नामक एक गरीब युवक था। वह एक सौदागर की दूकान में काम करता था। जो थोड़ी-बहुत तनख्वाह मिलती थी, उसी से अपने परिवार का पेट पालता था।

उसी शहर में एक डाकू था जो शहर के साथ आसपास के गाँवों में भी चोरी किया करता था। सुलतान ने ऐलान किया कि जो आदमी उस डाकू को पकड़वा देगा उसे भारी इनाम दिया जाएगा।

इस ऐलान के थोड़े दिन बाद रजाक घर से बाहर निकलकर अपनी बीबी को डांटने व झपटने लगा। भीड़ इकट्ठी हुई, लोगों ने इसका कारण पूछा।

"भाइयो, आप ही लोग बताइये, मेरी बीबी कैसी बेवकूफ़ है। मेरे ससुर ने उसके पास एक संदूक़ भेजा और यह कहला भेजा कि उसे सुलतान को सौंप दे तो बढ़िया इनाम देंगे जिस से आराम से हम अपने दिन काटे। मैंने वह संदूक़ माँगा, यह देती नहीं, कैसी बेवकूफ़ है! आप ही लोग इसको समझाइये।" रजाक़ ने शिकायत की।

इतने में रजाक़ की बीबी घर से बाहर निकली और बोली—"मेरे बाप के दिमाग में गोबर भरा है और मेरे शौहर उनसे भी ज्यादा बेवकूफ़ है। उस संदूक़ में सिवाय एक कागज़ के टुकड़े के कुछ नहीं है। इसे लेकर ये जनाब राजधानी जाना चाहते हैं। सुलतान साहब इन पर खुश हो शाल ओढ़नेवाले हैं। चाहे जो हो, मैं वह संदूक़ किसी के हाथ न दूंगी।" यों साफ़ बताकर रजाक़ की बीबी ने घर के भीतर जाकर चिटकनी लगा ली।

रजाक़ बरामदे में बैठकर गुनगुनाने लगा—"मैं भी देखूँगा, तुम कैसे न दोगी!"

रामचन्द्र शर्मा

यह ख़बर मिनटों में डाकू के कानों में पड़ गई। मौक़ा पाकर उस संदूक़ को हड़पने के लिए डाकू हज़ार आँखों से रजाक़ के मकान पर निगरानी रखे रहा।

दो दिन बाद, न मालूम रजाक ने अपनी बीबी को कैसे मनाया, संदूक़ लेकर राजधानी की ओर चल पड़ा। उसके पीछे डाकू भी निकल पड़ा।

दिन भर यात्रा करके रात को रजाक राजधानी में पहुँचा और एक सराय में ठहर गया। डाकू भी उसी सराय में जा ठहरा। रजाक ने भांप लिया कि एक आदमी उसके पीछे राजधानी चला आया है और वह डाकू ज़रूर होगा! यों सोचकर रजाक उस संदूक़ को अपने निकट रख लिया और गहरी नींद का अभिनय करते ख़ुर्राटे लेने लगा। मौक़ा पाकर डाकू उस संदूक़ को हड़पकर दूसरे दिन सुलतान के दरबार में हाज़िर हुआ।

सिपाहियों ने डाकू के द्वारा लाये गये संदूक़ को सुलतान के हाथ सौंप दिया। सुलतान ने संदूक खुलवाकर देखा, उसमें एक कागज़ के टुकड़े पर लिखा हुआ था– "यह संदूक़ लानेवाला व्यक्ति अमुक शहर का नामी डाकू है।" उसके नीचे रजाक का नाम, गली और गाँव का नाम लिखा हुआ था।

सुलतान ने सुनवाई के पूरा होने तक डाकू को जेलख़ाने में बंद करने का आदेश दिया। इस घटना को प्रत्यक्ष देखनेवाले रजाक ने किसी प्रकार सुलतान के दर्शन प्राप्त करके निवेदन किया–"हुज़ूर! मैंने ही डाकू को पकड़वा दिया है। मुझ पर हुज़ूर की मेहरबानी हो!"

डाकू के घर की तलाशी लेने पर कई लोगों की चोरी गई चीज़ें बरामद हुईं। सुलतान ने डाकू को जेल में डलवा दिया और उसे पकड़ानेवाले रजाक को एक हज़ार सोने के दीनार इनाम में दिये। उस धन से रजाक़ ने अपना निजी व्यापार शुरू किया और आराम से अपनी ज़िंदगी बसर करने लगा।

मानव निर्मित देवता

एक महायोगी अद्‌भुत शक्तियाँ रखते थे। वे देशाटन करते अज्ञात में पड़े देवताओं में चेतना भरते और शिथिल मंदिरों का पुनरुद्धार किया करते थे। उन्होंने इस यात्रा के दौरान एक गाँव के निकट एक उजड़े ग्राम-देवी के मंदिर को देखा, उसका पुर्ननिर्माण कराकर वे अपने रास्ते चले गये।

उसी दिन रात को ग्राम-देवी ने गाँव के मुखिये को सपने में दर्शन देकर चेतावनी दी कि वह गाँव की देवी है। गाँववाले उसकी उपेक्षा करते हैं, वे सब एक साथ आकर उससे क्षमा न माँग ले तो वह सारे गाँव को भस्म कर देगी!

उस गाँव का मुखिया एकदम नास्तिक था। वह देवता तथा भूत-प्रेतों पर बिलकुल विश्वास न रखता था। इसलिए उसने ग्राम देवी की यह बात झूठी मानी, इस कारण उसने यह बात किसी से न कही और वह मौन रह गया।

वास्तव में गाँव का नाश करने की शक्ति ग्रामदेवी नहीं रखती थी। इसलिए उसने सोचा कि मुखिया उसकी धमकियों से डरेगा नहीं, उसे साम, दाम उपायों के द्वारा मनवा लेना चाहिए।

उन्हीं दिनों में उस गाँव के शिवप्रसाद गुप्त नामक एक व्यापारी के घर में चोर घुस आये और उसकी सारी संपत्ति लूटकर ले गये। शिवप्रसाद पक्का कंजूस था। उसने मुखिये के पास जाकर रोते हुए शिकायत की और अपनी संपत्ति वापस दिलाने की मिन्नत भी की।

इस बार फिर ग्रामदेवी ने मुखिये को सपने में दर्शन देकर यह बताया कि शिवप्रसाद की संपत्ति कहाँ पर छिपाई गई है और साथ ही यह चेतावनी दी कि

शीला गौड़

कम से कम इस बार ही सही, उसकी महिमा को वह स्वीकार करे, वरना उसका बड़ा अहित होगा।

मुखिया चुपचाप अकेले चला गया और वह सारी संपत्ति अपने घर उठा लाया।

इस पर ग्रामदेवी नाराज हो उठी और बोली–"तुमने शिवप्रसाद की संपत्ति वापस किये बिना हड़प ली है। याद रखो, मैं तुम्हारा सर्वनाश करूँगी।"

मुखिये ने प्रणाम करके बताया–"देवीजी! मुझ पर नाराज़ मत हो जाओ। शिवप्रसाद पक्का कंजूस है। यह संपत्ति चाहे उसके घर रहे या जमीन में गड़ी रहे, दोनों बराबर है। मैं यह संपत्ति गुप्त दानों के पीछे खर्च करूँगा। तुमने जो मदद दी, उसके प्रत्युपकार के रूप में मैं तुम्हारी इच्छा की पूर्ति करूँगा।"

आखिर दोनों बात करके एक समझौते पर पहुँचे।

दूसरे दिन मुखिये ने चौपाल में गाँववालों को अपने सपने का वृत्तांत सुनाकर कहा–"भाइयो, देवी ने मुझे दर्शन देकर बताया है कि वह एकादशी के दिन गाँव की उत्तरी दिशा में नारियल के बगीचे में पृथ्वी से अवतरित होनेवाली है।" फिर क्या था, एकादशी के दिन

गाँव के सभी लोग नारियल के बगीचे में पहुँचे। सब के देखते ग्रामदेवी की मूर्ति पृथ्वी से प्रकट हो गई। लोग डर गये, भय और भक्ति के मारे मूर्ति के सामने साष्टांग दण्डवत करने लगे।

इसे देखने पर मुखिये के मन में एक विचार आया। उस दिन रात को सपने में जब देवी ने फिर से दर्शन दिये; तब उसने पूछा–"माते! तुम पर लोगों का अपार विश्वास हो गया है। अब जो भी मांगे, लोग देने की स्थिति में आ गये हैं। मैं चन्दा वसूल करके तुम्हें एक नया मंदिर बनवा कर गहने भी बनवा दूंगा! अनुमति दो।"

मुखिये में यह परिवर्तन देख देवी ने प्रसन्न होकर स्वीकृति दे दी।

मुखिये ने सारे गाँव में देवी के अद्भुत की प्रशंसा की। चन्दा वसूल किया। देवी के लिए एक छोटा मंदिर बनवाया। सुनार के द्वारा गहने बनवा कर देवी को सजाया। मुखिये ने अपने वचन का पालन किया, इस पर देवी ने उसकी तारीफ़ की।

मगर उस दिन रात को सुनार ने मंदिर में प्रवेश करके देवी के सामने साष्टांग दण्डवत किया और कहा–"माते! अपना पेट भरने के लिए मैंने मुखिये के कहे अनुसार तुम्हें मुलम्मे चढ़ाये गये गहने बनाकर दिये हैं; मैं भले ही लोगों को धोखा दूँ, पर तुम जगन्माता को धोखा नहीं दे सकता हूँ न! मेरे इस अपराध को क्षमा करो, देवी!"

देवी को लगा कि वह बेहोश होते जा रही है। दूसरे ही क्षण क्रोध से आग-बबूला होते हुए देवी ने मुखिये को दर्शन देकर कहा–"अरे मूर्ख! भोले लोगों को बहका कर मुझे भी धोखा देना चाहते हो? देखो, तुम्हारा सर्वनाश कर बैठूंगी।"

मुखिये ने शांति पूर्वक मुस्कुराते हुए कहा–"माँ, तुम तो मूक देवी हो! मेरी वजह से तुम्हारा यश चारों तरफ़ फैल गया है। ऐसी तुम मेरा क्या बिगाड़ सकती हो? मैंने अपराध ही क्या किया है? निस्वार्थ भाव से कोई भी व्यक्ति कोई कार्य नहीं करता! निधिपालक देवताओं के लिए मंदिर क्यों बनवाते हैं? मोक्ष पाने के लिए! इसी प्रकार तुम्हारी आराधना करनेवाले लोग अपनी कामनाओं की पूर्ति करने के लिए ही, तुम्हारे पुजारी भी स्वार्थ से प्रेरित होकर ही तुम्हारी सेवा करते हैं। तुम्हारे कारण मेरा भी बड़ा उपकार हो गया है। सच बात तो यह है कि मेरी सहायता के लिए तुम्हीं मेरे ऋणी बन गई हो।"

मुखिये की ये बातें सुन देवी अवाक् रह गई।
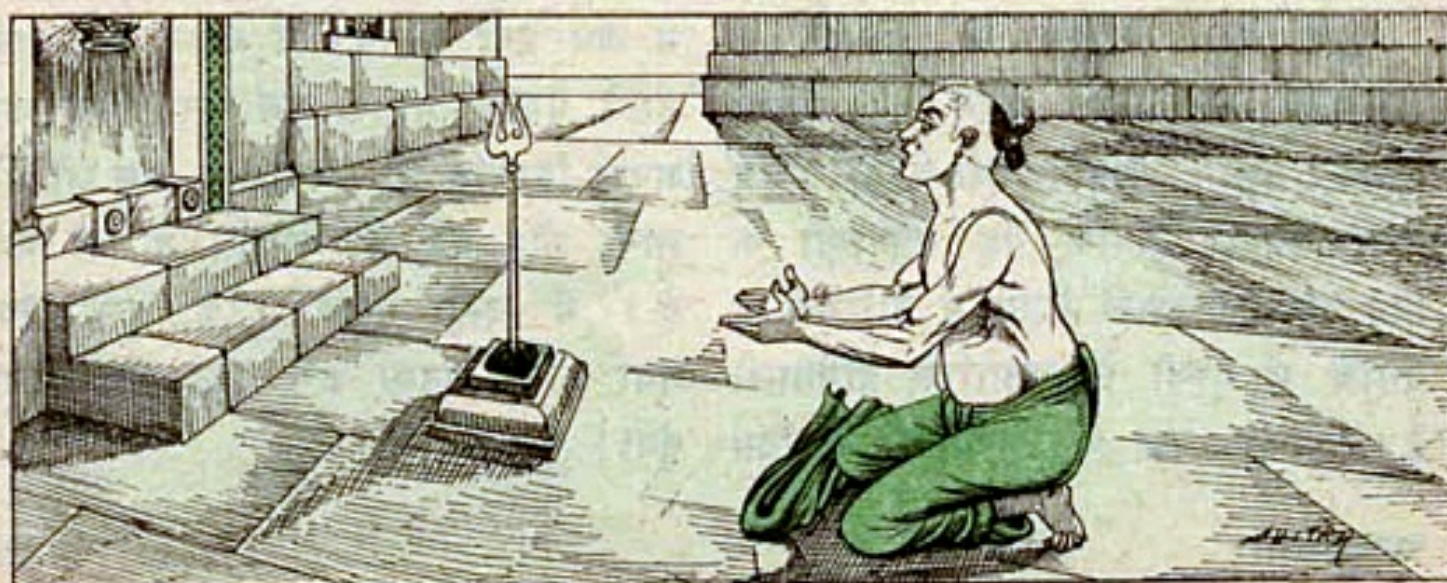
फल का फैसला

गोलकोंडा का नवाब एक बार शिकार खेलने जंगल में अपने परिवार के साथ बहुत दूर निकल गया। दुपहर हो गई। घोड़े और आदमी भी मारे प्यास के परेशान से हो गये।

सिपाहियों ने पानी की बड़ी खोज की, पर कहीं पानी का पता न चला। नवाब बुरी तरह से बिगड़ उठा। उसने कहा—"क्या शिकार खेलने के लिए जाने के पहले तुम्हें इस बात का ख्याल रखना जरूरी न था कि वहाँ पर पानी है या नहीं? जाओ, सामने दीखनेवाले उस पहाड़ पर चढ़कर देख लो, कहीं पानी का पता चले?"

सिपाही हांफते-हांफते पहाड़ पर चढ़ गये। पहाड़ पर से चारों ओर नज़र दौड़ाई तो एक ओर उन्हें पुदकनेवाले पक्षी दिखाई दिये। नवाब की जान में जान आ गई, फिर क्या था, उसने उस दिशा में अपने घोड़े को बढ़ाया।

एक जगह एक बगीचा था। एक साधू वहाँ के पेड़-पौधों में पानी देते दिखाई दिया। साधू मस्त प्रकृति का था, उसने सोचा कि कोई मुसाफ़िर रास्ता भटककर उधर आ निकला है। लेकिन जब उसे मालूम हुआ कि वह व्यक्ति उस प्रदेश का नवाब है, तब उसने नवाब को बिठाकर उसका आदर-सत्कार किया।

एक सिपाही दोने में पानी भरकर ले आया, वह पानी नारियल के जल के समान बड़ा रुचिकर था। नवाब ने जब अपनी प्यास बुझाई, तब उसकी नजर वहाँ के दाढ़िम के पेड़ों पर पड़ीं। उन पेड़ों के फल नारियल के परिमाण में बड़े ही अद्‌भुत लग रहे थे। नवाब ने इतने बड़े दाढ़िम के फल कहीं न देखे थे।

नवाब ने जब उन दाड़िम फलों की बड़ी तारीफ़ की, तब साधू ने एक फल तोड़कर एक बर्तन में उसका रस निछोड़ा और नवाब को पीने को दिया। नवाब को इस बात का आश्चर्य और आनंद भी हुआ कि एक ही फल में इतना ज्यादा रस है और साथ ही अमृत के समान स्वादिष्ट है, तब नवाब के मन में तरह-तरह के विचार पैदा होने लगे। नवाब सोचने लगा कि उस बगीचे से साधू को बड़ी आमधनी होती होगी, मगर क्या पता कि वह उसका कर चुकाता है या नहीं?

यों सोचते नवाब ने साधू से एक फल का रस और माँगा। साधू ने रस निछोड़कर दे दिया, लेकिन इस बार फल का रस उतना ज़्यादा स्वादिष्ट न था।

इस पर नवाब ने साधू से पूछा—"साधू महाराज, दूसरा फल भी बड़ा था, मगर उसमें आधा ही रस है, क्या बात है?"

साधू ने मुस्कुराते हुए उत्तर दिया—"हुज़ूर, माफ़ करें। पहले फल का रस पीनेवाले और दूसरे फल का रस पीनेवाले व्यक्ति शायद एक ही न हो।"

"आप यह कैसी बात कहते हैं? दोनों फलों का रस मैंने ही पिया था न?" नवाब ने अचरज में आकर कहा।

"हुज़ूर! मैं इस बात पर यक़ीन नहीं कर सकता। फल कभी भी झूठा फ़ैसला नहीं कर सकते। आप ही सोचिये, आपके दिल के अन्दर कोई बड़ा परिवर्तन हुआ होगा?" साधू ने शांतिपूर्वक जवाब दिया।

नवाब को लगा कि उसकी नीयत में ज़रूर परिवर्तन आ गया है। साधू की मेहनत की तारीफ़ किये बिना उनका शोषण करने का विचार मन में आया है। उसी का परिणाम दाड़िम के फल में प्रकट हुआ होगा। शायद शासकों की दुर्बुद्धि को प्रकृति भी घृणा की दृष्टि से देखती है।

इसके बाद नवाब ने अपनी राजधानी में पहुँचते ही बगीचों पर लगाये जानेवाला कर रद्द किया और फल के वृक्षों को लगाने में जनता को प्रोत्साहित किया।
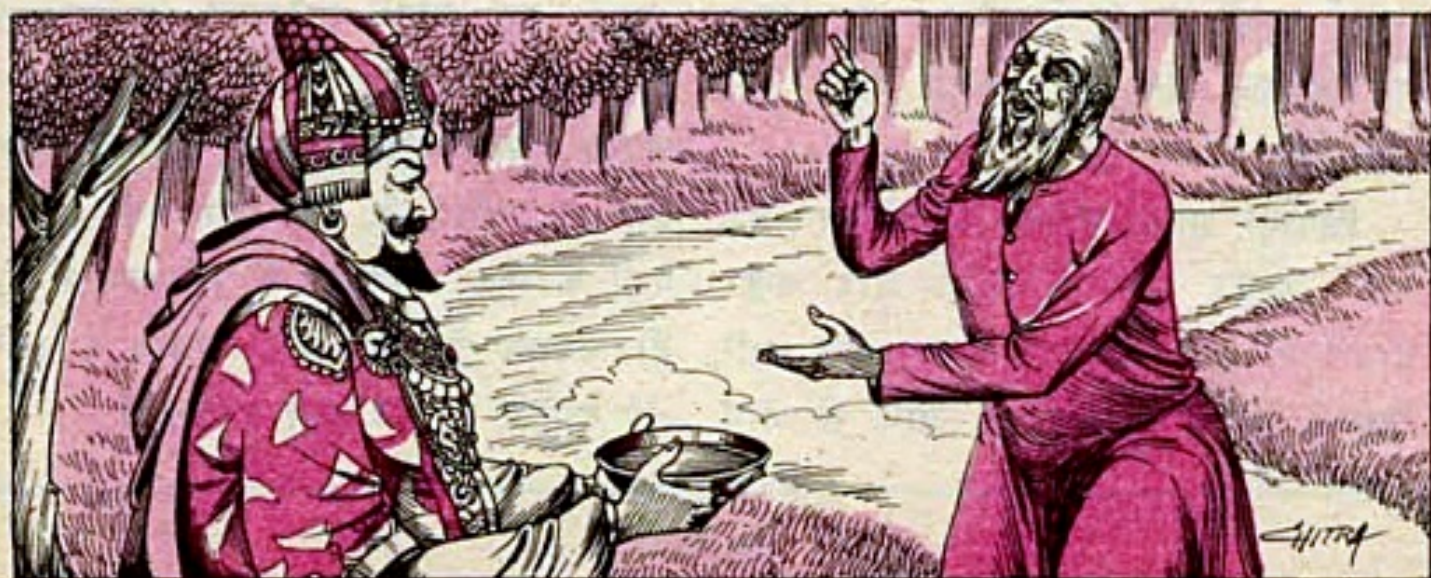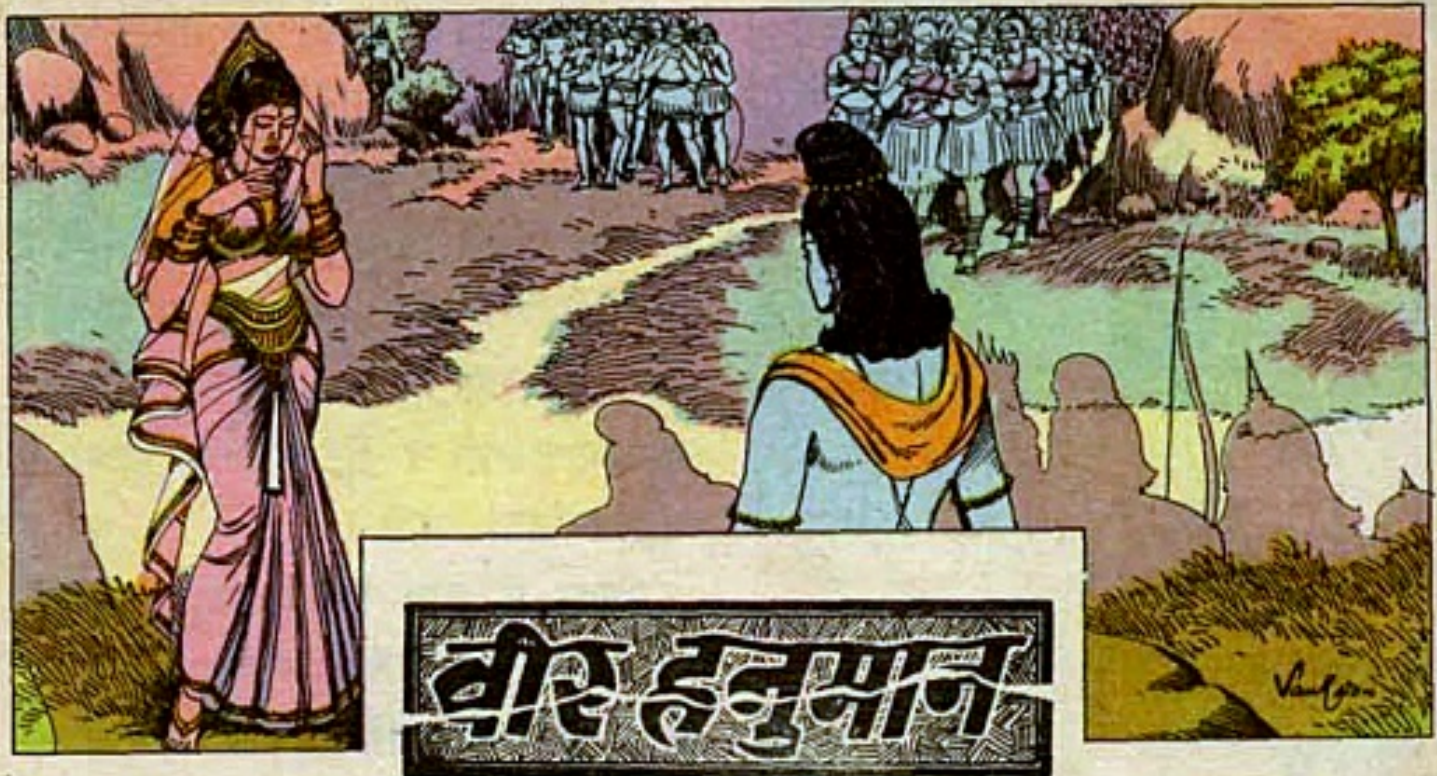
रामचन्द्रजी ने क्रोध में आकर सीताजी को भला-बुरा कहा, ये शब्द सुनने पर वहाँ के लोग भय और विस्मय के मारे सिहर उठे। सीताजी ने पहली बार रामचन्द्रजी के मुँह से ऐसी बातें सुनीं; इसलिए लज्जा के मारे नत मस्तक हो उन्होंने आँसू बहाये।

थोड़ी देर बाद आँसू पोंछते हुए सीताजी बोलीं—"महान वीर! आप क्यों ऐसी बातें करते हैं? ये बातें ऐसे अज्ञानी के मुँह से निकलने लायक़ हैं जो किसी चीज़ की जानकारी के अभाव में बोलता है। ये बातें वास्तव में मेरे सुनने योग्य भी नहीं हैं। आप की धारणा के अनुरूप मेरा पतन नहीं हुआ है। चाहें तो आप मेरी परीक्षा लीजिए। नारियों में दुश्चरित्र भी होती हैं, पर इसका तात्पर्य सभी नारियाँ दुश्चरित्र नहीं हैं। यदि मेरी प्रवृत्ति से आप भली भांति परिचित हैं तो मुझ पर शंका न कीजिए। अगर दुष्ट रावण के शरीर का स्पर्श मुझे हुआ है तो मेरी असहायता के कारण हुआ है, इसलिए यह अपराध ईश्वर का है; मेरा नहीं! मेरे अधीन रहनेवाला मन आप पर केन्द्रित है। मुझे इस बात का दुख है कि इतने वर्षों तक साथ रहने के पश्चात आप मेरे चरित्र को समझ न पायें तो मुझे ऐसा लगता है कि अब आप किसी भी हालत में समझ न पायेंगे! यदि मुझे त्यागना ही चाहते थे तो आप ने मेरी

खोज करने हनुमान को क्यों भेजा? हनुमान के द्वारा यह खबर भेजते तो मैं उन्हीं के सामने अपने प्राण त्याग देती। आप को यह युद्ध करने की आवश्यकता न होती और आप के मित्र श्रम से बच जाते।"

इसके उपरांत सीताजी ने लक्ष्मण से कहा–"मेरे प्यारे देवर लक्ष्मण, मेरी व्यथा को दूर करने के लिए तत्काल एक चिता बनाओ। उसमें कूदकर मैं अपने प्राण दूंगी। मैं सच बता रही हूँ कि इस प्रकार अपमानित होकर मैं एक पल भी जीवित रहना नहीं चाहती! इतने सारे लोगों के समक्ष मेरे पति मुझे त्याग देते हैं तो अग्नि-प्रवेश के अतिरिक्त मेरे सामने दूसरा कोई उपाय नहीं है।"

ये बातें सुन लक्ष्मण ने दुखी होकर रामचन्द्रजी की ओर देखा। उनके चेहरे के भावों से लगा कि सीताजी के अग्नि-प्रवेश करने में उन्हें कोई आपत्ति नहीं है। इसलिए लक्ष्मण ने सीताजी की इच्छा के अनुरूप चिता बनाई।

चिता में आग लगाई गई, फिर क्या था, चिता धक् धक् करके जल रही थी। सीताजी सर झुकाये रामचन्द्रजी की प्रदक्षिणा करके चिता के निकट पहुँची; तब विनम्रतापूर्वक हाथ जोड़कर बोलीं–"यदि यह सत्य है कि मेरा मन रामचन्द्रजी को छोड़ दूसरे पुरुष के प्रति आसक्त नहीं है, तो अग्निदेव मेरी रक्षा करें। यदि सूर्य, वायु, अष्टदिक्पालक, चन्द्र, दिन, रात, प्रातः व संध्या, पृथ्वी तथा अन्य देवता मुझे पतिव्रता के रूप में स्वीकार करते हैं तो अग्निदेव मेरी रक्षा करें।" यों कहकर सीताजी चिता की प्रदक्षिणा करके जलती चिता में कूद पड़ीं।

उस दृश्य को देख वहाँ पर उपस्थित सभी लोग भयभीत हुए और नारियाँ रो पड़ीं। राक्षस तथा वानरों ने हाहाकार किये। रामचन्द्रजी आँसू बहाते चिंतामग्न

रह गये। वहाँ के वायुमण्डल में सर्वत्र शोक छा गया।

इतने में चिता बिखर गई। उसमें से अग्निदेव मानव के रूप में प्रकट हुए और सीताजी को उठाकर बाहर ले आये। सीताजी पहले की भांति आभूषण धारण किये हुए थी, लाल साड़ी पहने हुये थी। उनका शरीर झुलसा तक न था। इस दृश्य को देख सारे लोग विस्मय में आ गये।

अग्निदेव ने रामचन्द्रजी से कहा—"हे राम! यह आप की पत्नी सीताजी हैं। इन्होंने कभी, यहाँ तक कि स्वप्न में भी सिवाय आप के किसी का स्मरण तक नहीं किया है। रावण ने इन्हें अंत:पुर में भयंकर राक्षस नारियों के बीच रखा, प्रलोभन दिखाया, डराया, फिर भी इन्होंने रावण का स्मरण तक नहीं किया। यह मेरा आदेश है, आप सीताजी को ग्रहण कर लीजिए।"

अग्निदेव के मुँह से ये शब्द सुनने पर रामचन्द्रजी पूर्ण संतुष्ट हुए। अपनी करनी पर पश्चात्ताप प्रकट करते आँसू गिराये। तब उन्होंने अग्निदेव से कहा—"यह बात सत्य है कि सीताजी पवित्र हैं। परंतु वह विवशता की हालत में ही सही कई दिनों तक रावण के घर रहीं। यदि मैं सीताजी की परीक्षा लिये बिना यूँ ही ग्रहण करता तो लोग यही कहते—"महाराजा दशरथ के पुत्र राम मूर्ख और कामी हैं, धर्म का ज्ञान नहीं रखते। लेकिन तीनों लोकों में यह सत्य प्रकट हो जाय कि सीताजी पतिव्रता और पवित्र हैं, इसी ख्याल से उनके अग्नि-प्रवेश करते देखकर भी मैं मौन रहा। अपनी रक्षा कर सकनेवाली सीताजी का रावण कुछ बिगाड़ सकता था? जलती अग्नि का स्पर्श करना किसके लिए संभव है? आप लोग नहीं जानते कि सूर्य और प्रकाश के बीच जो अटूट संबंध है, वही मेरे तथा सीताजी के बीच है। मैं आप के आदेश का अवश्य पालन करूँगा।"

तुम्हें देख कौशल्या प्रसन्न होगी। तुम अयोध्या जाकर राज्याभिषेक कर लो और अपने छोटे भाइयों के साथ सुखपूर्वक रहो।"

रामचन्द्रजी ने विनयपूर्वक हाथ जोड़कर दशरथजी से यों कहा: आप ने कहा था कि मुझे वनवास में भेजने की माँग करने पर माता कैकेई तथा भाई भरत को आप त्याग देंगे, इसलिए अब आप से मेरा नम्र निवेदन है कि आप कृपया उन पर अनुग्रह कीजिए।"

दशरथजी ने राम की बात सहर्ष मान ली और लक्ष्मण से गले लगाकर रामचन्द्रजी के प्रति उसकी सेवाओं की भूरि-भूरि प्रशंसा की। अंत में वे सीताजी से बोले-- "तुम रामचन्द्रजी पर नाराज़ मत होओ।" यों समझाकर पुनः वे स्वर्ग में चले गये।

उसी समय दशरथ स्वर्ग से एक दिव्य विमान में आरूढ़ हो वहाँ पर आ पहुँचे। राम और लक्ष्मण ने उन्हें प्रणाम किया। दशरथ ने रामचन्द्रजी का आलिंगन करके यों कहा--"बेटा राम! तुम्हें छोड़कर रहने के कारण स्वर्ग के सुख व देवताओं का आदर मुझे सुख न पहुँचा सके। शत्रुओं का वध करके वनवास की समाप्ति करनेवाले तुम्हें देख मुझे परम प्रसन्नता हो रही है। कैकेई ने तुम्हें वनवास में भेजने को कहा था। यह बात अब भी मेरे मन में साल रही है। पर अब मुझे मालूम हुआ कि रावण का वध करने के लिए ही देवताओं ने तुम्हारे राज्याभिषेक का भंग किया।

उस वक़्त इन्द्र ने रामचन्द्रजी के सम्मुख उपस्थित होकर वर माँगने को कहा। रामचन्द्रजी ने सभी वानरों को जिलाने का अनुरोध किया। इन्द्र ने मान लिया। युद्ध में अंग भंग हो मृत पड़े वानर और भल्लूकों को जीवित हो उठते देख सभी लोग विस्मय में आ गये। वहाँ पर प्रसन्नता की लहर दौड़ गई।

उस दिन रात को सबने सुखपूर्वक विश्राम किया। सवेरे विभीषण ने राम-

चन्द्रजी के स्नान करने के हेतु आवश्यक सुगंध द्रव्य, वस्त्र तथा स्नान कराने के लिए अनेक परिचारिकाओं का भी प्रबंध किया।

रामचन्द्र ने विभीषण से कहा–"तुम सुग्रीव आदि वानर वीरों को स्नान के लिए बुलाओ, मुझे तत्काल अयोध्या जाना होगा। भरत ने शपथ की है कि चौदह वर्ष के समाप्त होते ही मैं दूसरे ही दिन अगर न दिखाई दूँ तो वह अग्नि प्रवेश करेगा। मुझे तुरंत भरत को देखने जाना है। स्नान मेरे लिए प्रधान नहीं है।"

इस पर विभीषण ने समझाया–"रामचन्द्रजी! मैं आप को एक दिन के अंदर अयोध्या में पहुँचा सकता हूँ। कुबेर के यहाँ से रावण ने ज़बर्दस्ती जो पुष्पक विमान छीन लिया था, उसे मैंने आप ही के वास्ते सुरक्षित रखा है। मैं आप, लक्ष्मण तथा सीताजी का सत्कार करना चाहता हूँ, इसे स्वीकार करने की कृपा करें।"

रामचन्द्रजी ने समझाया–"विभीषण, युद्ध में तुमने मेरी बहुत बड़ी सहायता की है। यही मेरा सबसे बड़ा सत्कार है। मैं चित्रकूट में रहनेवाले भरत को तत्काल देखना चाहता हूँ। साथ ही मेरी माताएँ कौशल्या, कैकेई और सुमित्रा, मेरे गुरु विश्वामित्र और वशिष्ट, मित्र व नगरवासियों को भी शीघ्र देखना चाहता हूँ, तुम तुरंत पुष्पक विमान मँगवा दो। मुझे जाने की अनुमति दो।"

तत्काल विभीषण पुष्पक विमान ले आया। पुष्पमालाओं से अलंकृत वह विमान दिखाकर विभीषण ने पूछा–"रामचन्द्रजी! मैं आप के उपकार को कदापि भूल नहीं सकता। कृपया बताइये कि और आप की क्या आज्ञा है?"

"विभीषण! तुम्हारा उपकार भी वास्तव में भुलाया नहीं जा सकता! मैं वानरों तथा भल्लूकों की सहायता को भी भूल नहीं सकता। वस्त्र व आभूषणों,

के द्वारा उनका सत्कार करो। देवताओं के लिए भी दुस्साध्य यह लंका नगर वानरों के कारण हमारे अधीन हो गया है। उनके श्रम का फल दिला दो। उनके प्रति तुम अपनी कृतज्ञता प्रकट करो तो वे अत्यंत प्रसन्न हो जायेंगे।"

विभीषण ने दिल खोलकर समस्त वानरों का सत्कार किया। तब रामचन्द्रजी सीताजी के साथ पुष्पक विमान पर आरूढ़ हुए। उनके पीछे लक्ष्मण भी विमान पर सवार हुआ। इस पर रामचन्द्रजी वानर, सुग्रीव तथा विभीषण से बोले–"तुम लोगों ने मेरे कार्य की सिद्धि में हाथ बंटाया। अब मैं तुम्हें अनुमति देता हूँ कि तुम लोग अपनी इच्छा के अनुसार जहाँ जाना चाहे, जा सकते हो! सुग्रीव, तुमने मित्र के रूप में वक़्त पर मेरी भारी सहायता की। तुम अपनी सेनाओं के साथ किष्किधा में जाकर सुखपूर्वक रहो। विभीषण! मैंने तुम्हें जो लंका-राज्य सौंप दिया है, सुखपूर्वक उस पर शासन करो। देवता भी तुम्हारा सामना नहीं कर सकते। मैं अब अयोध्या जा रहा हूँ, अनुमति दो।"

इस पर सुग्रीव आदि वानर तथा विभीषण ने भी रामचन्द्रजी से कहा–"हमारे मन में भी अयोध्या जाने की प्रबल इच्छा है! हमें भी आप कृपया अपने साथ ले जाइए! हम वहाँ पर जंगल तथा नगरों में भी इस प्रकार संचार करेंगे जिससे वहाँ की जनता को हमारे द्वारा कभी कोई कष्ट न हो! हम आप का राज्याभिषेक देख, माता कौशल्या को प्रणाम करके अपने अपने नगरों को पुनः लौट चलेंगे।"

"तुम लोग मेरे साथ चलना चाहे तो मुझे और प्रसन्नता होगी। सुग्रीव! तुम और तुम्हारे वानर तुरंत पुष्पक विमान के अन्दर आ जाओ। विभीषण, तुम और तुम्हारे मंत्री भी आ जाओ।"

सुग्रीव के साथ वानर तथा विभीषण के साथ उसके मंत्री विमान पर सवार हुए;
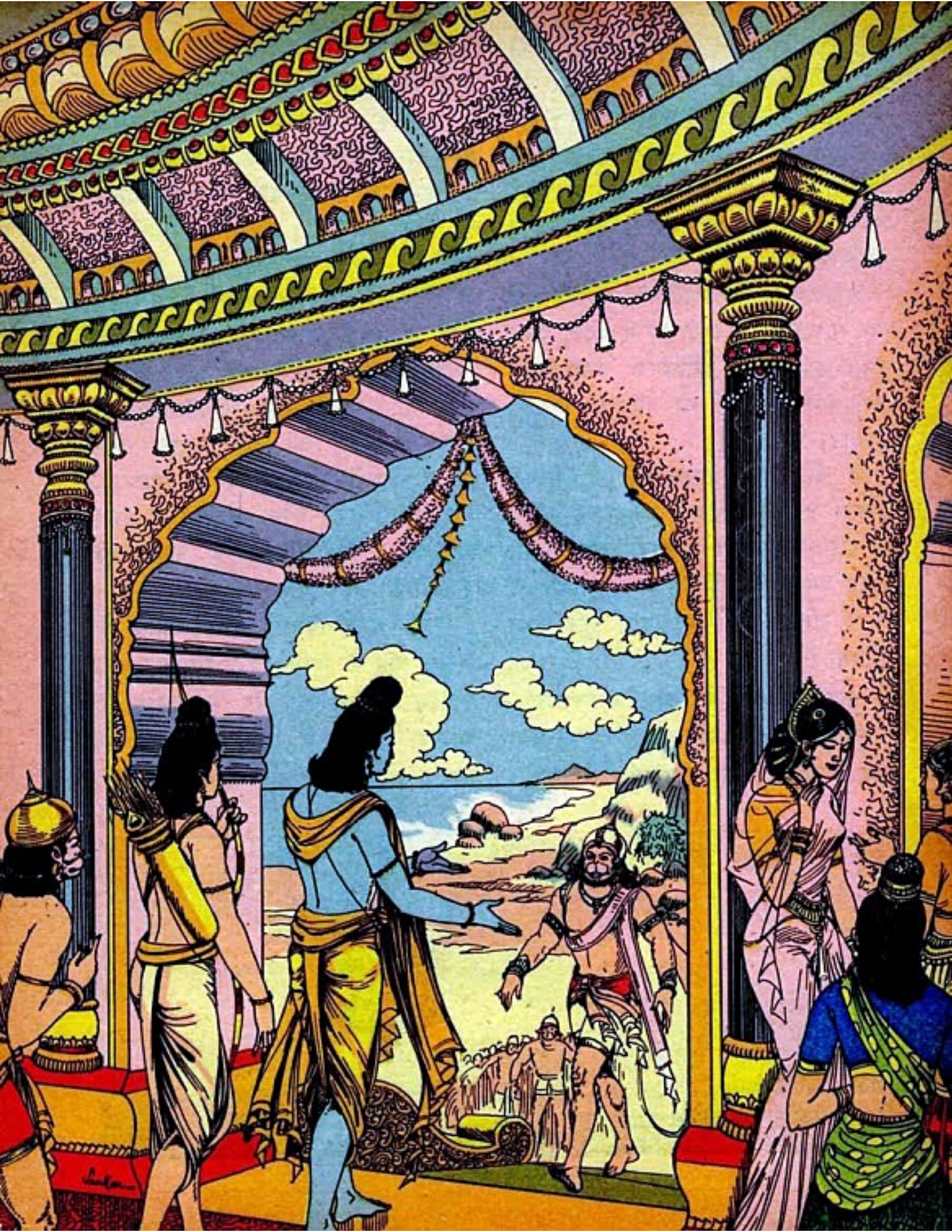
तब पुष्पक विमान आकाश में उड़ा। वह विमान वायुवेग के साथ आकाश में उड़ रहा था, रामचन्द्रजी ने सीताजी को त्रिकूट पर्वत पर स्थित लंका नगर, रक्त सिक्त युद्ध क्षेत्र, रावण और कुंभकर्ण का वद्य स्थल, समुद्र, सेतु तथा किष्किधा नगर को भी दिखाया।

सीताजी ने रामचन्द्रजी से अनुरोध पूर्ण स्वर में कहा–"मैं अयोध्या में प्रवेश करते समय अपने साथ सुग्रीव की पत्नी तारा तथा वानर प्रमुखों की पत्नियों को भी ले जाना चाहती हूँ।"

ये बातें सुन रामचन्द्रजी ने पुष्पक विमान को किष्किधा में रुकवाकर सुग्रीव से कहा–"सीताजी तुम्हारी तथा सभी वानर प्रमुखों की पत्नियों को अयोध्या ले जाना चाहती है। यह बात तुम सभी नारियों से कह दो।"

सुग्रीव ने तारा के निकट जाकर कहा–"रामचन्द्रजी का आदेश है कि तुम्हें तथा वानर नारियों को अयोध्या ले चलूं। यह सीताजी की कामना है। तुम लोग शीघ्र रवाना हो जाओ।"

तारा अपाद मस्तक अपने को अलंकृत करके अन्य वानर नारियों से बोली–"हम सब अयोध्या जाकर वहाँ की विशेषताओं को देख आयेंगी। जल्दी रवाना हो जाओ।" वानर नारियाँ शीघ्र सजाकर सीताजी को देखने के कुतूहल को लेकर तारा के साथ चल पड़ीं। उन सबके पुष्पक विमान पर आते ही विमान चल पड़ा। रामचन्द्रजी ने सीताजी को ऋश्यमूक पर्वत का वह स्थान जहाँ पर वे पहली बार सुग्रीव से मिले थे, दिखाया। तब पंपा सरोवर, कबंध का वद्य स्थल तथा अन्य प्रदेश भी दिखाया।

इसके बाद विमान अत्रि महर्षि के आश्रम, गुह के श्रृंगिबेरपुर, चित्रकूट तथा भरद्वाज के आश्रमों पर से उड़ते हुए अयोध्या नगर के समीप पहुँचने को हुआ।
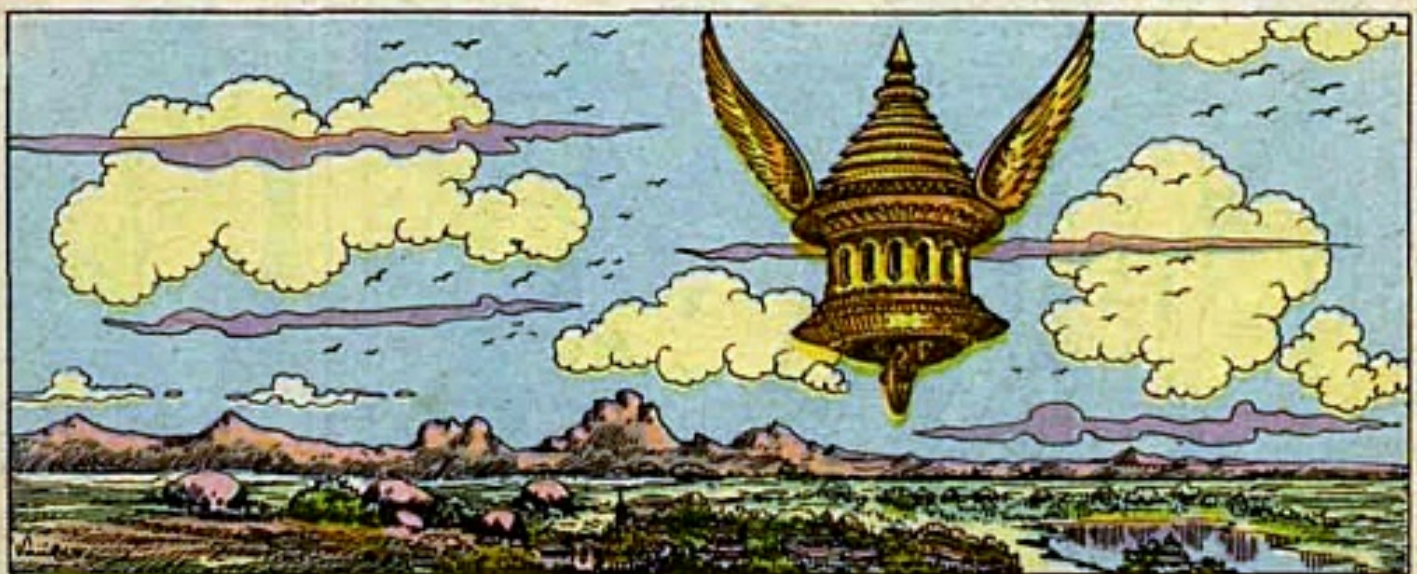
सिंहगढ़ की विजय

सह्याद्रि पर्वत पंक्तियों के एक शिखर पर सिंहगढ़ दुर्ग निर्मित है। उस दुर्ग को महाराष्ट्र के राजाओं से मुगलों ने छीन लिया था। मुगल सेना का उदयभानु नामक राजपूत सेनापति उस दुर्ग की रक्षा के हेतु नियुक्त किया गया था।

इतिहास प्रसिद्ध मराठा नेता शिवाजी प्रतापगढ़ नामक दुर्ग में निवास किया करते थे। शिवाजी की माता जीजा बाई एक दिन प्रात:काल अपनी पूजा समाप्त कर खिड़की के पास आकर खड़ी हो गईं। दूर पर सिंहगढ़ दुर्ग को देखने पर उनके मन में कोई विचार आया।

उस समय शिवाजी थोड़ा अस्वस्थ रहने के कारण विश्राम कर रहे थे। उस दिन शाम को शिवाजी अपना समय काटने के लिए माताजी के साथ शतरंज खेलने गये, तब वह बोलीं–"बेटा, इस खेल में तुम हार जाओगे तो मुझे कैसा पुरस्कार दोगे?" शिवाजी ने उत्तर दिया–"माताजी, आप जो पुरस्कार चाहेंगी, सो दूंगा।"

शिवाजी खेल में हार गये। उन्होंने पूछा–"माँ, बताइये, आप कैसा पुरस्कार चाहती हैं?" जीजाबाई ने गंभीर होकर कहा–"बेटा, मुझे सिंहगढ़ का दुर्ग चाहिए।" यह उत्तर सुनकर शक्तिशाली शिवाजी भी विस्मय में आ गये। सिंहगढ़ आसानी से प्राप्त होनेवाला पुरस्कार न था।

फ़िर भी शिवाजी ने वचन दिया था। उस दुर्ग पर हमला करने की हिम्मत रखनेवाला एक ही व्यक्ति था। वह था तानाजी मालसुरे! शिवाजी ने तानाजी के पास ख़बर भेजी। उस वक्त तानाजी अपने पुत्र के विवाह का उत्सव मना रहा था। फिर भी तुरंत चला आया।

शिवाजी ने अपनी माताजी की इच्छा तानाजी से बताई। तानाजी बिना संकोच के उसी वक्त एक हज़ार साहसी योद्धाओं को साथ ले उस घने अंधकार में मूसलधार वर्षा की परवाह किये बिना सिंहगढ़ की ओर चल पड़ा।

दुर्ग के पहरेदार निद्रा में निमग्न थे। तानाजी ने अपने सैनिकों को दुर्ग के पीछे तैनात किया। इसके बाद खूब प्रशिक्षण प्राप्त शिवाजी के पालतू गोह यशवंत की कमर में रस्सी बांध कर उसे दुर्ग के पत्थरों पर फेंका। गोह रेंगते जाकर एक पेड़ पर पहुँचा और रस्सी को उस पेड़ से लपेट दिया।

उस रस्सी की मदद से तानाजी के सैनिक चुपचाप दुर्ग की दीवारों पर पहुँच गये। इस प्रकार तीन सौ मराठे सैनिकं दुर्ग में पहुँच गये, फिर भी पहरेदार गहरी नींद सो रहे थे।
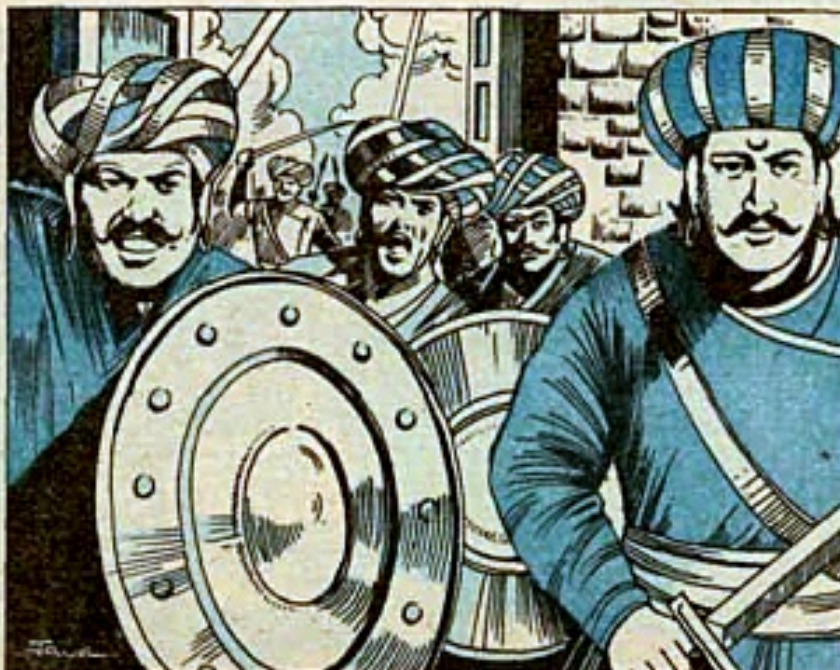
अचानक मराठे सैनिकों में से एक सैनिक रस्सी के फिसलने के कारण धम्म से नीचे गिर पड़ा। उस ध्वनि को सुनकर पहरेदार जाग उठे और दुर्ग के भीतर के सैनिकों को सचेत किया। मगर इस बीच तानाजी के कुछ सैनिक दुर्ग के द्वार पर पहुँचे और उसे खोल दिया।

दुर्ग की रक्षा करनेवाले मुगल सैनिकों ने तानाजी के साथ आये हुए मराठा सैनिकों का सामना किया। उन लोगों ने चन्द्रावली नामक एक मत्त हाथी को मराठे सैनिकों पर उकसाया। तानाजी एक ही छलांग में मत्त हाथी पर जा बैठा, उसे मुगल सैनिकों के बीच दौड़ाकर उन्हें घबरा दिया और बाद उस हाथी को मार डाला।
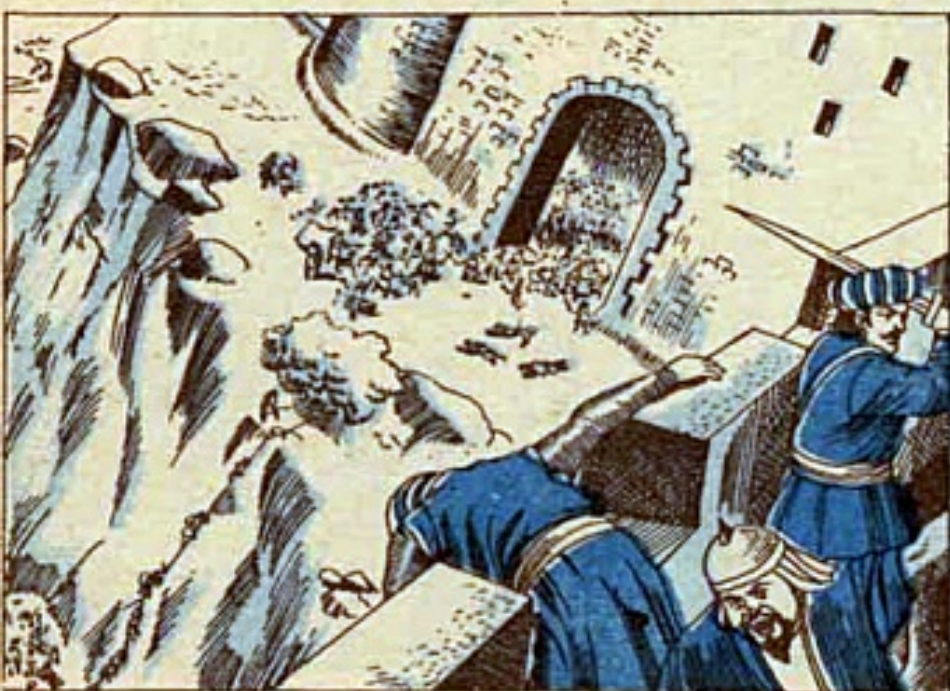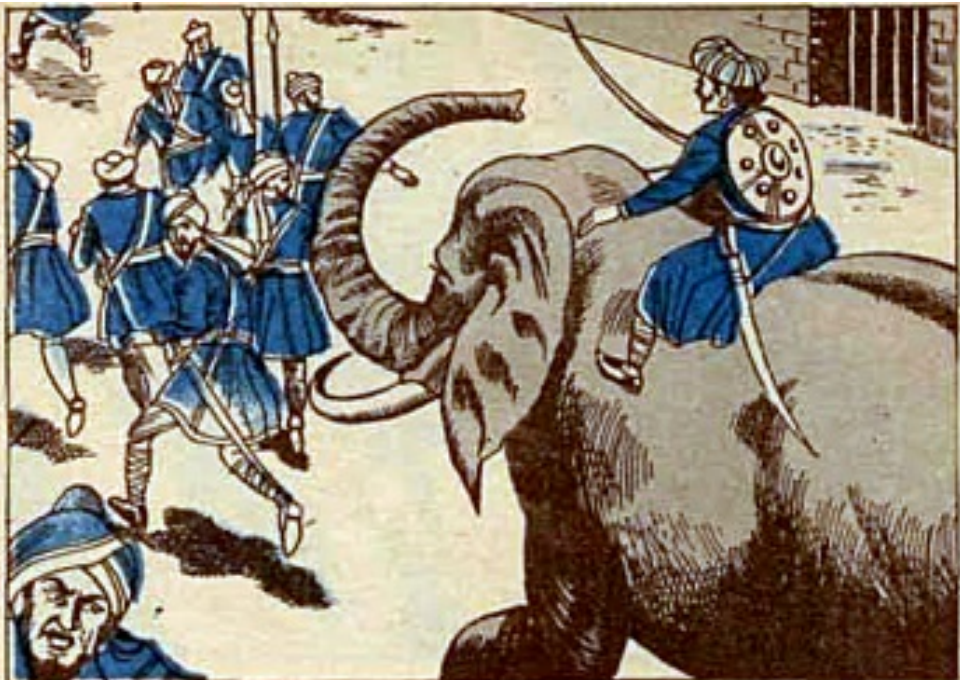
मराठे सैनिकों में से सात सौ सैनिक अभी तक दुर्ग के निचले भाग में ही थे। इस कारण तानाजी को दुर्ग की रक्षा करनेवाले असंख्य अरब, अफ़गान, पठान तथा राजपूत सैनिकों का अपने तीन सौ साथियों के साथ सामना करना पड़ा। फिर भी उसने अत्यंत साहस एवं पराक्रम का परिचय देकर युद्ध किया और सिंहगढ़ दुर्ग पर अधिकार कर लिया।

शत्रुओं के साथ जो भीषण युद्ध हुआ उसमें सिंह सम पराक्रमी तानाजी खूब घायल हुआ और शीघ्र ही मृत्यु को प्राप्त हुआ। शिवाजी ने जब तानाजी के मृत शरीर को देखा, तब दुख विह्वल हो यही कहा–"गढ़ आया, पर सिंह गया।"

कहानी शीर्षक-प्रतियोगिता

कहानी का सुंदर शीर्षक देकर रु. २५ जीतिए !

?

अवंती के पास जायदाद के नाम पर केवल सोने की सक अंगूठी थी। एक व्यापारी मित्र ने अवंती की उस अंगूठी को हड़पना चाहा। उसने अवंती से कहा–"दोस्त! मैं व्यापार करने की यात्रा पर जा रहा हूँ। मुझे इस बात की चिंता सता रही है कि तुम अपनी अंगूठी मुझे दोगे तो मैं जब भी उसे देखूँगा, तुम्हें देखने की कल्पना करके प्रसन्न रहूँगा।"

इस पर अवंती बोला–"ओह, मेरे मित्र! मैं भी तुम्हें इतने दिन देखे बिना कैसे रह सकता हूँ? यदि मैं यह अंगूठी तुम्हें न दूँ तो जब भी मैं इसे देखूँगा, तब इस बात की याद करके कि मैं इसे तुम्हें दे न पाया, ऐसे आनंद का अनुभव करूँगा कि मैं खुद तुम्हें देख रहा हूँ।"

★ ★ ★

उपर्युक्त कहानी के लिए सोच-समझ कर एक कार्ड पर उत्तम शीर्षक लिखकर "कहानी शीर्षक-प्रतियोगिता" चन्दामामा, २ & ३, अर्काट रोड, वड़पलनी, मद्रास-६०००२६ के नाम भेज दीजिए। लिफ़ाफ़ों में प्राप्त उत्तरों पर विचार नहीं किया जाएगा।

कार्ड हमें नवम्बर १० तक प्राप्त हों और उसमें फोटो-परिचयोक्तियाँ न हों। इसके परिणाम चन्दामामा के जनवरी '७८ के अंक में घोषित किये जायेंगे।

सितंबर मास की प्रतियोगिता का परिणाम: "ईमानदारी की हद"

पुरस्कृत व्यक्ति: **श्री सुधीर कुमार 'आनंद'** प्लाट नं. ४२. को-ऑपरेटिव कॉलोनी, धनबाद

फोटो-परिचयोक्ति-प्रतियोगिता :: पुरस्कार २५)

पुरस्कृत परिचयोक्तियाँ जनवरी १९७८ के अंक में प्रकाशित की जायेंगी।

P. Sundaram

★

Dilip V. Pamkar

★ उपर्युक्त फोटो की सही परिचयोक्तियाँ दो-तीन शब्दों की हों और परस्पर संबंधित हों।

★ नवम्बर १० तक परिचयोक्तियाँ प्राप्त होनी चाहिए, उसके बाद प्राप्त होनेवाली परिचयोक्तियों पर विचार नहीं किया जाएगा।

★ अत्युत्तम परिचयोक्ति को (दोनों परिचयोक्तियों को मिलाकर) २५ रु. का पुरस्कार दिया जाएगा।

★ दोनों परिचयोक्तियाँ कार्ड पर लिखकर (परिचयोक्तियों से भिन्न बातें उसमें न लिखें) निम्नलिखित पते पर भेजें: चन्दामामा फोटो-परिचयोक्ति-प्रतियोगिता, मद्रास-२६

सितंबर के फोटो-परिणाम

प्रथम फोटो: पापी पेट मछली मरवावे!

द्वितीय फोटो: मजबूरी ही नाच नचवावे!!

प्रेषक: दा. बिमल कुमार रांका, C/o रांकाजी ब्रदर्स, पो. नीमाज (वया) ब्यावर

पुरस्कार की रु. २५राशि इस महीने के अंत तक भेजी जाएगी।

चन्दामामा के ग्राहकों को सूचना

यदि आप अपना पता बदल रहे हों, तो पांचवीं तारीख से पहिले ही अपनी ग्राहक-संख्या के साथ, अपना नया पता सूचित कीजिये। यदि विलम्ब किया गया, तो अगले मास तक हम नये पते पर 'चन्दामामा' न भेज सकेंगे। आपके सहयोग की आशा है।

डाल्टन एजन्सीस, मद्रास-६०० ०२६

महोदय, गुप्ताजी की चेक बुक तैयार हो गई है।
ठीक है। देखो बच्चो। बस, चेक काटो और पैसा लो।

क्या सचमुच यह इतना सरल है ?
बैंक में आपका पैसा न केवल सुरक्षित ही रहता है बल्कि...

हेलो, मि. शर्मा! क्या मेरे बेटे के रुपये....
हाँ, ये रुपये आप ले लीजिये।

इनका बेटा हमारे बैंक की मार्फत इन्हें रुपया भेजता है। इससे रुपया सुरक्षित रहता है और साथ ही समय पर इन्हें रुपया भी मिल जाता है। लोगों की मदद करने का बैंक का एक तरीका यह भी है।

माँ! ये सब गहने आप कहाँ ले जा रही हैं?

वे गहने यहाँ ला रही हैं। आपकी सभी कीमती वस्तुएं इन लॉकरों में पूरी तरह सुरक्षित रहती हैं।
क्या ये कबूतरों के छोटे छोटे घरों की तरह नहीं दिखते?

महोदय, आपका बैंक और किस तरह लोगों की मदद कर सकता है?
बड़े होने पर, जब आप कोई कारोबार शुरू करना चाहेंगे तो हम उस समय भी आपकी मदद करेंगे।

सचमुच! परन्तु कैसे?
उसी तरह, जैसे कि हम अपनी ऋण-योजनाओं से बहुत से लोगों की मदद कर रहे हैं। हाँ, हमें गांवों का भी पूरा-पूरा ध्यान है।

रसीली
प्यारी
मज़ेदार

५ फलों के स्वाद—
रासबेरी, अनन्नास,
नींबू, नारंगी व मोसंबी.

PARLE POPPINS MIXED FRUITY SWEETS

everest/1036/PP-hn